

23



॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२६८

॥ श्रीः ॥

रघुवंश-प्रश्नोत्तरी

परीक्षोपयोगि-विविधप्रश्नपत्रसहिता

(प्रथमः सर्गः)

सम्पादकः

पण्डित रामचन्द्रभा व्याकरणाचार्यः



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९७५

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० २०३२

मूल्य



© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१

फोन : ६३१४५

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी २२१००१

प्रथमसर्ग-पर्यालोचनम् (प्रश्नोत्तर)

(१) महाकविकालिदासस्य कः कालः ? (१९७५*)

(प्रश्नोत्तर हिन्दी में क्यों लिखा गया है ? समाधान पृ० १४ के नोट में देखे)

कुछ भारतीय विद्वानों का मत है कि ई० पू० प्रथम शतक में उज्जयिनी में विक्रमादित्य नाम का महाप्रतापी राजा राज्य करता था। वह बड़ा उदार और विद्वानों का आदर करने वाला था। हाल की 'गाथासप्तशती' और जैन-ग्रन्थों से इसकी पुष्टि होती है। संभव है कि कालिदास के विक्रमादित्य ये ही रहे हों। इसके अनुसार कालिदास का काल ई० पू० प्रथम शतक होता है, किन्तु पाश्चात्य विद्वान् इसको नहीं मानते। डॉ० कीथ का कथन है कि—

“कालिदास का प्राकृत अश्वघोष और भास के प्राकृत से अर्वाचीन है। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में अश्वमेध यज्ञ का वर्णन किया है। इनसे यह पुष्ट होता है कि कालिदास गुप्त वंश के किसी बड़े सम्राट् के आश्रय में थे। ये सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय ही रहे होंगे। कालिदास के 'कुमार-संभव' में इनके जन्म की घटना की रूपरेखा मिलती है। अतः कालिदास का समय ई० अनन्तर चतुर्थ शतक मानना चाहिए”।

वस्तु तस्तु कालिदास का काल अभी तक अन्धकार में ही है। निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में अग्निमित्र को नायक बनाया है। अग्निमित्र पुष्यमित्र शुंग का आत्मज था। पुष्यमित्र का समय ई० पू० द्वितीय शतक माना जाता है। यही कालिदास के समय की उपरिष्ठत सीमा है। बाणभट्ट ने कादम्बरी की प्रस्तावना में कालिदास का नाम लिया है। बाणभट्ट का समय भी ई० अ० सप्तम शतक का पूर्वार्ध माना जाता है। यह कालिदास के समय की नीचे की सीमा

* (१९७५) इस संकेत से यह प्रश्न इस ई० में पूछा गया है, यह समझना चाहिए। प्रश्नाकार प्रश्नपत्रों में देखें।

है। इन्हीं दोनों सीमाओं (ई० पू० द्वितीय और ई० अ० सप्तम शतक) के बीच किसी समय कालिदास रहे होंगे।

(कालिदास का जीवनवृत्त २० द्वि० सर्ग के पर्यालोचन में देखिए)

(२ । रघूणां वंशवर्णनम् (१९५१, ७४)

पृथिवी-पतियों में सबसे प्रथम भूपाल भगवान् भास्कर के पुत्र वैवस्वत-मनु रघुवंश के प्रवर्तक हुए। रघुवंशी राजाओं के वर्णन के विषय में स्वयं ग्रन्थकार ने कहा है—

“क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः” (श्लो० २) ।
अर्थात् सूर्य से उत्पन्न वह सूर्यवंशी (रघुवंशी) राजा कहाँ ? और कहाँ मेंरी मन्द मति.....” अस्तु,

रघुवंशी भूपालों का साम्राज्य समुद्र पर्यन्त विस्तृत था। स्वर्गलोक तक उनका रथ आता-जाता था। वे राजा लोग सत्पात्रों को आवश्यकतानुरूप यथेच्छ दान देते थे। अपने रघुवंश की कीर्तिपताका को दिग्दिगन्तर फैलाने के लिए ही युद्ध में आक्रामक आततायियों को मार भगते थे।

सन्तानोत्पत्ति तथा यज्ञफल-प्राप्ति के लिये ही रघुवंशी राजा लोग पाणि-ग्रहण-संस्कार करते थे। बाल्यावस्था में वे सभी राजा लोग अपने कुल-परम्परागत गुरु-कुल में विद्याभ्यास करते थे और राज-सिंहासनारूढ होते ही राजनीति का अक्षरशः पालन करते थे। प्रजाओं की भलाई के लिये ही प्रजाओं के लाभार्थ का पट्टांश कर लेते थे। चाँथेपन में वे राजा लोग ऋषि-मुनियों के समान तपोवन में जा-जा कर वान-प्रस्थ धारण कर लेते थे और प्राणान्त समय में (‘ऊँ इत्येकाक्षरं ब्रह्मेति) परमात्मा का ध्यान करते हुए परम पद को प्राप्त करते थे।

(३) रघुवंशे दिलीपवर्णनम् (१०७१, ७३)

वेदों के ‘ऊँ’ कार के समान पृथिवी-पतियों में सर्व-प्रथम मनस्वी भूपाल सूर्य-पुत्र ‘वैवस्वत’ नामक मनु हुए। उन्हीं सूर्य-वंश में समुद्र-मंथन से उपलब्ध चन्द्रमा के समान राजा दिलीप उत्पन्न हुए। उनकी लम्बी-लम्बी (आजानु बाहु) भुजायें, विशाल ललाट और बद्धस्थल ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों शरीर को धारण किए हुए क्षत्रियों के धर्म-पराक्रम ही हो। राज-सिंहासना-

रुद्ध होते ही महाराज दिलीप ने अपने प्रभावशाली ऊँचे पराक्रम से समस्त भूमण्डल के राजाओं को सुमेरु पर्वत के समान दबाये हुए थे—उनके सामने सभी राजाओं के शिरोमुकुट झुक जाते थे। उनकी करोड़ों चतुरंगिणी सेनाएँ राज्य की शोभा मात्र बढ़ाने के लिए थीं। आक्रामक दुश्मनों को मार भगाने के लिये तो उनका अर्हनिश धनुष की प्रत्यंचा पर चढ़ा हुआ बाण ही था। अदेवमातृका (वादल-निरपेक्ष) भूमि पर बसती हुई उनकी प्रजायें रथ-चक्र के समान उनका अनुगमन करती थीं। महाराज दिलीप प्रजाओं की भलाई के लिए ही प्रजाओं से पष्ठांश कर लेते थे। चतुर्दश विद्याओं के पारंगत महाराज दिलीप का ज्ञान युवावस्था में ही इतना परिपक्व हो गया था कि वृद्धावस्था आने के पहले ही उनके विचार-विमर्श में उनका वृद्धत्व भासित होता था। महाराज दिलीप ने अपने प्रताप से मर्त्यलोक को स्वर्गलोक बना रखवा था। वे विविध यज्ञों से देवलोक को और देवेन्द्र मेघ द्वारा सामयिक वृष्टि करा कर मर्त्यलोक को सन्तुष्ट रखते थे। महाराज दिलीप को देखने से मालूम होता था कि विधाता ने पंचमहाभूतों की कारण-सामग्री से ही उनके शरीर की रचना की है। क्योंकि जिस प्रकार पृथिव्यादि पंचमहाभूतों के गन्धादि गुण दूसरों के लिये ही होते हैं, वैसे ही उनके दया-दाक्षिण्यादि गुण प्रजाओं के प्रयोजन मित्रि के लिये ही थे। उनका राज्य चारों ओर से समुद्र और नगाधिराज से परकोटे की तरह घिरा हुआ, अत एव दुश्मनों के लिये अगम्य था। उन्होंने अखण्ड आर्यावर्त (भारत) का एक नगरी के रूप में शासन किया। उनके आसमुद्रान्त विशाल सूर्यवंशी राज्य में नदत सूर्य उदित रहने के कारण महाराज दिलीप चक्रवर्ती कहलाते थे।

(४) दिलीपस्य वसिष्ठाश्रमगमनवर्णनम् (१९७२, ७३)

रघुवंशी राजा दिलीप की मगध देश की राज-पुत्री सुदक्षिणा नाम की पत्नी थी। उसी पत्नी से अपने अनुरूप ही पुत्रोत्पत्ति की प्रतीक्षा में जब राजा दिलीप के बहुत समय बीत चुके तब उन्होंने एक दिन शुभ मुहूर्त में मंत्रियों के ऊपर राज्यभार को सौंप दिया और दोनों पति-पत्नी विधाता की पूजा करके सन्तानप्राप्ति के निमित्त पुत्रेष्टि यज्ञ करने के लिए रथाखंड होकर कुल गुरु वसिष्ठ के आश्रम को चल पड़े। चूंकि आश्रम-वासी को विशेष कष्ट न हो

इस उद्देश्य ने राजा दिलीप ने बहुत थोड़ी अपने अंगरक्षक घुड़सवार पलटनों को साथ में लिया था। फिर भी वे अपने प्रभाव से बड़ी फौजों के साथ अदब से जाते हुए से प्रतीत हो रहे थे। तपोवन-प्रदेश में रथ के प्रवेश करते ही राजा-रानी को सर्ज (सरइ) वृक्ष की गोंद के सौरभ से सुरभित फूलों के परागों को बिखेरने वाले तथा रथ-मार्गस्थ वृक्षों की पंक्तियों को घीरे-घीरे हिलाने वाले शीतल-मुगन्ध पवन का सुखद स्पर्शानुभव होने लगा। इतने में रथ-चक्रों के गड़-गड़ाहट को सुन कर मेघ-ध्वनि की भ्रान्ति से बोलते हुए मयूरों के मनोरम धब्दों ने राजा-रानी को इषद्धसित कर दिया। उसी समय तपोवन-मार्ग के बीच से हंट-हंट कर मृग-मृगी के जोड़े अपलक दृष्टि से राजा-रानी की मनोहर मुखाकृति को देखने लगे और उन जोड़ों की आँखों से राजा-रानी अपने दोनों (जोड़ी?) में एक दूसरे की आँखों की समता करने लगे। (राजा कमलाक्ष थे, तो रानी मृगनयनी?) उसी समय जब राजा-रानी तपोवन के आकाश की ओर देखने लगे तो उन्हें पंक्तिबद्ध होकर उड़ते हुए हंसी की पंक्ति इस तरह प्रतीत हुई मानो बिना पुष्पमालाओं के मजा-सजाय (हम दोनों के स्वागतार्थ) तोरण बना हो। आगे-आगे घुड़-सवारों के जाते हुए नी रास्ते में राजा-रानी धूलि-धूसरित नहीं हुए, क्योंकि उनके प्रभाव से वायु उन दोगों के पुरोगामिनी होकर के ही बहती थी। रास्ते में पड़ने वाले गाँव के याज्ञिक ब्राह्मण विद्वान् जिन्हें राजा दिलीप ने यज्ञ करने के लिए दान में 'यूप' (द्र० २० 'इन्दुमती' टीका, पृ० ४४) दिया था राजा-रानी को रोक-रोक कर अनिपेक करते थे और ग्वाला लोग राजा-रानी को मक्खन भेट करके हृतार्थ होते थे। रास्ते भर राजा ने रानी को ऐसे-ऐसे अद्भुत वस्तु दिखाने में व्यस्त रहे कि वसिष्ठाश्रम के निकट आ जाने पर भी उन्हें यह पता नहीं था कि कितने दूर आगये और अब कितना दूर जाना बाकी है। इतने में सन्ध्या समय होते-होते गुरुवर वसिष्ठ के आश्रम पर रथ पहुँच गया।

(५) वसिष्ठाश्रम-वर्णनम् (१६७५)

पत्नी सुदक्षिणा के साथ राजा दिलीप जिस समय गुरु वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। उस समय सूर्यास्त हो रहा था। वसिष्ठाश्रम के मुनिगण वनान्तर से समिधा, कुश तथा आश्रमोपयोगी सामग्री ले-ले कर कुटियों में प्रवेश कर

रहे थे और मुन्यन्न (तिन्नी-धान्य के चावल) का सन्ध्याकालीन सीघा पाने वाले मुनि-कुमार के तथा उन्हीं के समान सायं आहारार्थी मृग-झुंडों के कत्तारों से आश्रम के मुख्य द्वार अवरुद्ध हो रहा था और रंग-विरंग की मनोरम पुष्प-वाटिका के सन्ध्याकालिक सेचनावसिष्ठ आल-वालों (कियारियों) के जल पीती हुई नाना रंग की पक्षियों के मुमधुर कूजन से आश्रम मुखरित हो रहा था । सूर्यास्त होने पर आश्रम के प्रांगणों से मुन्यन्नों का अपसरण होने से उन सफे-मुथरे स्थानों पर सशावक बैठकर जुगाली करते हुए मृग-गण शोभ रहे थे ।

जिस समय सपत्नीक राजा दिलीप आश्रम के द्वार पर रथ से उतरे उस समय सन्ध्याकालीन हवन-दग्ध पुरोडास की सुगन्धि से युक्त बूमायमान वह वसिष्ठाश्रम खुशबू से तर हो रहा था । रथ से उतरते ही पहले उस तपोवन के कुलपति वसिष्ठ के आश्रमवासी मुनियों ने राजा-रानी दोनों की यथायोग्य अर्हणा की । तत्पश्चात् गुरुदेव ने दोनों का अभिवादन किया ।

(६) दिलीप-वसिष्ठयोः संवादः (१९७२, ७४)

महाराज दिलीप पुत्रप्राप्ति की कामना से अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ कुलगुरु वसिष्ठ के शरणागत होकर पहुँचे । राजा-रानी दोनों ने एक साथ गुरुचरणों में झुक कर प्रणाम किया ।

वसिष्ठ ने दिलीप से राज्य का कुशल-समाचार पूछने के पश्चात् जब आगमन का कारण पूछा, तो दिलीप ने कहा—गुरुवर ! आपके आशीर्वाद से सर्वत्र मंगल ही मंगल है । किन्तु आपकी पुरोवर्तिनी पुत्र-वधू इस सुदक्षिणा को सन्तति-हीन देख कर अन्य समस्त सुख-सम्पदाओं के रहने पर भी मुझे राज्य श्रीहीन मालूम पड़ता है । प्रभो ! देव-ऋण और पितृ-ऋण से तो मैं स्वयं मुक्त हो भी सकता हूँ, पर पितृ-ऋण से उऋण तो पुत्रवान् ही होता है गुरुवर ! कहा भी है—

“ऋणं देवस्य यागेन, ऋषीणां दानकमणा ।

सन्तत्या पितृलोकानां शोधयित्वा परिव्रजेत् ॥”

ऋषिवर ! आप विधाता के मानसपुत्र अत एव त्रिकालज्ञ हैं और मेरे सूर्यवंश के अनादिकाल से कुल-गुरु हैं । आश्चर्य है, मेरे आगमन का कारण

आप मुझसे पूछते हैं ? कृपा करके बताइए गुरुवर ! कि मेरे पुत्रहीन होने के महापाप का कारण क्या है ? महाराज दिलीप के साक्षेप करुण वचनों को सुन कर महर्षि वसिष्ठ समाधिस्थ हो गये और क्षणमात्र में ही उन्मिलित चक्षु होकर कहने लगे—राजन् ! एकदा देवलोक से इन्द्र का उपस्थान करके लौटते समय, ऋतुमती सुदक्षिणा के चौथे दिन पुत्र-कामना की प्रवलेच्छा से ऋतु-समागम को ही मुख्य मानकर (द्र० २० 'इन्दुमती' टीका, पृ० ७३) रास्ते में कल्पवृक्ष की छाया में बैठी हुई कामवेनु की प्रदक्षिणा किये बिना ही तेजी से आप निकल आये। उसी समय कामवेनु ने आपको शाप दे दिया—“जाओ, जिस सन्तति की कामना से पत्नी-सहवास को ही प्रधान मान कर तुमने मेरा अपमान किया है, उस सन्तति की प्राप्ति अब तुम्हें तब ही होगी जब तुम मेरी सन्तति 'नन्दिनी' को सेवा से प्रसन्न कर सकोगे—उसी के वरदान से तुम्हें पुत्र होगा” राजन् ! उस समय आकाश-गंगा (सुरनदी) में स्नान करते हुए वन्धनमुक्त श्रत एव स्वच्छन्द ऐरावत हाथियों के निनाद और गंगा की तरंगों की प्रतिध्वनि के कारण उस शाप को आपने और आपके सारथि ने भी नहीं सुना। अतः राजन् ! अब आप कामवेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा से ही सफलमनोरथ होंगे। इतने में दिवावसान के समय वसिष्ठाश्रम की वह किसलय के समान मनोरम आकृति वाली नन्दिनी “दिनक्षपामध्य गतेव सन्ध्या” के समान महर्षि वसिष्ठ के निकट आकर खड़ी हो गयी। गुरु वसिष्ठ के निर्देशानुसार राजा-रानी दोनों यथायोग्य नन्दिनी की सेवा में जुट गये। गोसेवा-विधि के प्रसंग में वसिष्ठ ने कहा—

“प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः।

निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः॥” (श्लोक० ८६)

(७) रघूणां रथ-वर्त्म-विवेकः

रघुवंशी राजाओं के रथ-मार्ग स्वर्ग तक अनवरुद्ध था। देवासुर-संग्राम में भूलोक का प्रथम मानव-योद्धा रघुवंशी महाराज दशरथ ने देवताओं की मदद की थी। उस समय महाराज दशरथ की पत्नी महारानी कैकेयी ने महाराज की सारथिनी बनकर देवासुर-संग्राम में उतर पड़ी थी और संग्राम के समय दैवात् रथ-चक्र के कील टूट जाने पर महारानी ने अपनी अंगुली को कील

बना कर रथ को थाम रक्खा था। इस दुर्घटना का समाचार विजयी महाराज को संग्रामोत्तर देखने-सुनने को तब मिला जब महारानी की अंगुली रक्त से लथ-पथ हो रही थी। उसी सौर्य के उपलक्ष में महाराज ने कैकेयी को प्रथम वरदान दिया था। जिसका दुरुपयोग माता कैकेयी ने 'रामवनगमन' के निदान में किया।

(द्वितीय वरदान ("भरत-राज्याभिषेक") का प्रसंग लेखक के चौखम्बा प्रकाशित 'रामवनगमन' की प्रस्तावना में देखें।)

छेपक—अब प्रश्न यह उठता है कि रघु-वंश के महारानी कैकेयी आत-तायी असुरों के भयानक संग्राम में गयी क्यों? और फिर सारथिनी बन कर? इतिहास साक्षी है, इधर महाभारत-संग्राम में भी वीरांगनाएँ रण-भूमि में नहीं उतरी थीं।

सत्यमेतत्?। पर यहां का प्रसंग यह था कि देवासुर-संग्राम में भाग लेने के लिए देव-राट् इन्द्र का भेजा हुआ निमन्त्रण महाराज ने बिना ननु-नच का स्वीकार करके जब रघुवंश के इस गुस्त्व का मुखद अनुभव कर रहे थे, उसी समय देवलोक में युद्धारम्भ का डंका बज उठा। महाराज धनुष-बाण उठाते ही सहसा व्यग्र हो उठे? क्योंकि—'रघुवंशी को ही स्वर्ग जाने-आने की छूट थी। उस समय महाराज के वंश में पुरुष नाम का एक अन्य बालक भी नहीं था। महारानी कैकेयी में पतिव्रता के सर्वोपरि लक्षण यह था कि वे महाराज की मुखाकृति देखते ही उनके मनोगत सभावों को मझ जाती थीं। उस दिन वे महाराज की व्यग्रता को समझ कर स्वयं सारथिनी बनने के लिए रथारूढ़ होने लगीं। महाराज ने उन्हें रोकते हुए कहा—'ठहरो रानी! आर्यावर्त (भारत) की लोक-मर्यादा का उल्लंघन मत करो, यहाँ की वीरांगनाएँ रण-क्षेत्र में नहीं उतरतीं—इज्जत का सवाल है, महारानी?

इस प्रकार महाराज ने उन्हें बहुत कुछ समझाया, पर वे महाराज के चरणों को छू-छू कर कहने लगीं—महाराज! आप आशीर्वाद दीजिए? और रघुकुल के इस उद्घोष को सार्थक करते दीजिए—

‘प्राण जाहि पर वचन न जाई’

महाराज! देवासुर-संग्राम के लिए आप देवराट् को वचन दे चुके हैं। चिन्ता न कीजिए महाराज?। असुर-संग्राम में अगर कुछ भी विघटन हुआ

तो मैं आपके चरण छू कर कहती हूँ—‘सूर्यवंश की महारानी आप की पत्नी यह कैकेयी स्वयं रण-चण्डी बन कर असुरों का संहार कर डालेगी। महाराज ! मैं सूर्य-कुल के सम्राट् आपकी किरण हूँ, प्रचण्ड सूर्य-किरण होने पर असुर-गण अपने-आप भस्मसात् हो जायेंगे महाराज !। इतना सुनते ही महाराज का धनुष तन गया, प्रस्थान की रण-भेरी गूँज उठी और महारानी कैकेयी ने उछल कर रथाश्वों की लगाम को थाम लिया। उस समय, भारत-भारती का श्वेत ध्वज महागगन में लह-लहाने लगा और विश्वविजयी महाराज का रथ तेजी से सुर-लोक को चल पड़ा।

(८) रघुवंशी-कुल-गुरु-वसिष्ठस्य परिचयः

ब्रह्मा के मानस-पुत्र ब्रह्मर्षि वसिष्ठ रामावतार के दर्शनाकांक्षी का भटल ब्रती बन कर रघुवंशी के अजर अमर कुल-गुरु थे। वरदान में भगवान् विष्णु से वसिष्ठ ने यहीं वर मांगा था —“मैं त्रेता युग में आपकी रामलीला अपनी आँखों से देखूँ प्रभो !” महाराज दिलीप से हजारों वर्षों के बाद भी रामोत्पत्ति-यज्ञ, रामवनगमन, भरतमनावन तथा रामराज्याभिषेक आदि सभी अवसर पर वसिष्ठ उपस्थित थे। गुरुदेव चाहते तो उनके आदेश पर ‘रामवनगमन’ ही रूक जाता। किन्तु त्रिकालज्ञ वसिष्ठ के मानस में संपूर्ण रामचरित पहले से ही अंकुरित था। अतः एव उन्होंने ने अपने अधिकार का दुरुपयोग नहीं किया। रामावतार होने पर सीताराम अर्हनिश उनके मानस-मन्दिर में विराजमान रहते थे। इस प्रसङ्ग में एक रोचक कथानक है :

एक रात केलि-भवन में सीता ने राम से कहा—“प्रभो ! हम दोनों अपने-अपने रूप-वाणी देख-सुन नहीं पाते, अतः अभी आप अपना दिव्य रूप हमको दे दें तथा मेरा रूप आप ले लें।” यह सुनते ही श्रीराम सिहर उठे। उन्होंने ने कहा—ऐसा मत करो प्रिये !। यह दुराग्रह पुनः संकट उपस्थित कर देगा। इस पर केलि-भवन की मानिनी सीता रूठ गयीं। उन्हें मनाने के लिए अन्तोत्पत्त्या श्रीराम को वैसा करना पड़ा। सीता के कवच-कुण्डल धारण करते ही महानिशा में समाधिस्थ गुरु वसिष्ठ के मानस-मन्दिर में सीता-राम के गुगल रूप परिवर्तित होने लगे। वसिष्ठ व्याकुल हो उठे—मन में पाप समा जाने का भय जाग उठा। तत्क्षण ही गुरु वसिष्ठ अन्तःपुर को चल पड़े।

पर्यालोचनम्

११

उन्हे रोकता कौन ?, ये भी ब्रह्म-पुत्र ब्रह्मर्षि नारद के अनुज तथा उन्हीं के समान देहाध्यासरहित सूर्यवंशी के बेरोक-टोक अजर-अमर महागुरु थे । उन्हीं ने सीधे अन्तःपुर में प्रवेश कर के राम-केलिभवन को खट-खटा कर कहा—‘वत्स राम ! राम-वेषधारिणी सीता ने लज्जा से जीभ कुचल कर धीरे से श्रीराम के कन्धों से चिपक कर कहा—“अब क्या होगा, नाथ !”

सम्बोधन का त्वत्ति उत्तर नहीं पाकर गुरुदेव व्यग्र होकर जोर-जोर से कहने लगे—राम, राऽम, राऽऽम, । श्रीराम ने सीता के कम्पित कपोलों को सुहराते हुए कहा—‘तुम राम बनी हो न, मैं तो साड़ी पहन कर गुरुदेव की बधू बन बैठा हूँ ? तुम गुरु के समक्ष जाती क्यों नहीं ? इन पर जब सीता राम के चरणों पर गिर कर माफ़ी मांगने लगी, तब राम ने कहा—‘गुरुदेव ! आपकी व्यग्रता का कारण आपकी पुत्र-बधू सीता ही है । क्षमा करें गुरुदेव ! इस रूप में दर्शन करने योग्य मैं नहीं हूँ । यह सुन, गुरुदेव इपद्धसित हो उठे और कहा—“शुभास्ते सन्तु पन्थानः” । महीने भर के बाद सीता के पुंस्वन संस्कार-समारोह में गुरुदेव सीता-राम का अभिषेक करते हुए देखे गये ।

इन्दुमती-स्मृतिदिवस

श्रा० शु० ११

वि० सं० २०३२

विद्वच्चरणचञ्चरीकः—

—रामचन्द्र भ्मा

रघुवंश-प्रश्नोत्तरी

द्वि० प्रश्नपत्रम् ई० १९७१

१ अधोलिखितेषु पद्येषु केषाञ्चित् चतुर्णां हिन्दीभाषयानुवादः कार्यः । २४

(क) क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।

तितीपुंदुस्तरं मोहादुदुमेनास्मि सागरम् ॥ २

(ख) प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताम्यो बलिमग्रहीत् ।

सहस्रगुणसमुत्तण्डुमादत्तो हि रसं रविः ॥ १८

(ग) अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयती पृथ्व्याम् ।

तो दाम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जन्मतुराश्रमम् ॥ ३५

(घ) विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ।

अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ॥ ५६

(ङ) तयोर्जगृहतुः पादाम् राजा राजी च मागधी ।

तो गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिनन्दतुः ॥ ५७

(च) तथा हीनं विधातर्मा कथं पश्यन् दूयसे ।

सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद् वन्द्यमाश्रमवृक्षकम् ॥ ७०

२ उपयुक्तश्लोकेषु स्थूलाक्षरैर्मुद्रितानां पदानां सन्धिविच्छेदं दर्शयित्वा
संस्कृते पर्यायो लेख्यः । १२

३ अधोलिखितेषु केषाञ्चित् त्रयाणाम् अन्वयमुत्वेन संस्कृतभाषया
व्याख्या कार्या २४

(क) वागार्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।

जगतः पितरौ वन्दे पावतीपरमेश्वरौ ॥ १

(ख) वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ।

आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ॥ ११

(ग) आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशगमः ।

आगमैः सदृशारम्भः आरम्भसदृशोदयः ॥ १५

(घ) लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् ।

सन्ततिः शुद्धवक्ष्या हि परब्रेह च शर्मणे ॥ ६९

(ङ) अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन् ! विगणयात्मनः ।

उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् ॥ ८७

४ उपयुक्तेषु श्लोकेषु केषांचित् त्रयाणां स्थूलाक्षरैर्मुद्रितानां पदानां
विग्रहप्रदर्शनपूर्वकं समासनामानि लेख्यानि । ६

५ रघुवंशे दिलीपस्य वर्णनं क्रियताम् । अथवा-रघूणां वर्णनं क्रियताम् । १४

६ अधोनिर्दिष्टेषु छन्दःसु केषांचित् चतुर्णां लक्षणोदाहरणानि लेख्यानि २०

अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, आर्या, वसन्ततिलका, शिख-
रिणी, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा, मालिनी, द्रुतविलम्बितम्, वंशस्थः, भुजङ्गप्रयातम्,
दोधकम्, तोटकम् ।

नोट :—प्रश्न पत्र में जहाँ संस्कृत या हिन्दी किसी भाषाविशेष का नामोल्लेख नहीं हो (जैसा कि नं० ५ के प्रश्न में है) वहाँ परोक्षार्थी स्वतन्त्र है, चाहे संस्कृत में प्रश्नोत्तर लिखे या हिन्दी में ।

प्रश्नोत्तराणि

१९७१

१—(क) कहाँ सूर्य से उत्पन्न हुआ वह सूर्यवंशी राजा और कहाँ अल्पज्ञ मेरी बुद्धि, अतः मैं अज्ञानता वश उसी प्रकार उसे पार करना (वर्णन करना) चाहता हूँ, जैसे कोई अज्ञानी पुरुष छोटी नाव से अपार समुद्र को पार करने की व्यर्थ इच्छा करता हो (यहाँ ग्रन्थकार के इस प्रकार का कथन अपने ग्रन्थ का महत्त्व दिखलाने के लिये है) ॥ २

(ख) महाराज दिलीप प्रजाओं की भलाई के लिये ही प्रजाओं से कर (मालगुजारी) लिया करते थे। जैसे कि सूर्य (मेघ द्वारा) पृथिवी पर हजार गुना जल बरसाने के लिये ही पृथिवी पर से (अपनी रश्मि द्वारा) जल लेते हैं—खींचते हैं ॥ १८

(ग) मन्त्रियों के माथे राज्यभार सौंप ने के बाद पुत्रप्राप्ति की कामना से (अनुष्ठानार्थ) वे दोनों पति-पत्नी (सुदक्षिणा और दिलीप) पवित्र हो कर (स्वस्त्ययन के पश्चात्) पहले ब्रह्मा की पूजा करके पश्चात्

ब्रह्मा के मानस पुत्र गुरु वसिष्ठ के आश्रम को प्रस्थान किये (वहाँ भी कामधेनु पूजनोत्तर ही नन्दिनीपूजन करेंगे । द्र० रघु० इन्दुमती टीका पृ० ७८) ॥ ३५

(घ) उस राजा दिलीप ने सन्ध्याकालिक जपादि नित्यकृत्य के बाद महातपस्वी गुरु वसिष्ठ जी को पत्नी अरुन्धती के साथ आगे-पीछे होकर बैठे हुए इस तरह देखा, मानो अपनी पत्नी स्वरूपा स्वहा रूपी देवी से सेवित (प्रज्वलित) साक्षात् होमाग्निदेव हों ॥ ५६

[ड] मगध देश की राजपुत्री पत्नी महारानी सुदक्षिणा और महाराज दिलीप दोनों ने एक साथ उन दोनों—गुरु-पत्नी अरुन्धती सहित गुरु वसिष्ठ—के चरणों को स्पर्श कर के प्रणाम किया और उन दोनों ने भी राजा-रानी को प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया ॥ ५७

[च] हे विधातः, ब्रह्मापि ! सन्तति से रहित मुझ को, स्नेह से अपने हाथों सींचे हुए (किन्तु) फलरहित आश्रम के छोटे वृक्ष की तरह, देखते हुए क्यों नहीं आप दुखी होते ? आपकी आश्रम-चाटिका की तरह आप ही से सम्बन्धित सूर्यवंश के इस दिलीप को फल (सन्तति) रहित देख कर आप दुखी क्यों नहीं होते ? ॥ ७०

२—चाल्पविषया—च अल्पविषया = पुनः ईषदज्ञेयार्थाः । भूत्यर्थम्—भूति अर्थम् = सम्पत्यर्थम् ('भूतिर्भस्मिन् सम्पदि' इत्यमरः) । अथाभ्यर्च्य—अथ अग्नि अर्च्यं = अनन्तरं सम्पूज्य । स्वाहयेव—स्वाहया इव = स्वाहाख्याऽग्नि-पत्न्या यथा । गुरुर्गुरुपत्नी—गुरुः गुरुपत्नी = वसिष्ठः अरुन्धती ।

३—[क] अन्वयः—वागर्थविव सम्पृक्ता जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वगर्थप्रतिपत्तये वन्दे ।

व्याख्या—वागर्थविव = शब्दार्थविव, सम्पृक्ता = सम्मिलितौ, (नित्य-सम्बद्धौ), जगतः = भुवनस्य, पितरौ = मातापितरौ, पार्वतीपरमेश्वरौ = गीरीशङ्करी, वागर्थप्रतिपत्तये = शब्दार्थयोः सम्यग्ज्ञानाय, वन्दे = प्रणमामि, अहं कालिदासः इति शेषः ॥ १

(ख) अन्वयः—छन्दसां प्रणवः इव मनीषिणां माननीयः महीक्षिताम् आद्यः वैवस्वतः नाम मनुः आसीत् ।

व्याख्या—छन्दसां = वेदानां, प्रणवः = ओङ्कारः, इव = यथा, मनीषिणां = विदुषाम्, माननीयः = पूज्यः, महीक्षितां = पृथिवीपतीनाम्, आद्यः = प्रथमः, वैवस्वतः = सूर्यपुत्रः, नाम = वैवस्वतनाम्ना ख्यातः, मनुः = ऋषिः, आसीत् = बभूव । ११

(ग) अन्वयः—आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः आगमैः सदृशारम्भः आरम्भसदृशोदयः (आसीत्) ।

व्याख्या—आकारसदृशप्रज्ञः = आकृतिसमबुद्धिः, प्रज्ञया = बुद्ध्या, सदृशागमः = अनुरूपशास्त्रपरिश्रमः, आगमैः = शास्त्रैः, सदृशारम्भः = तुल्यकर्मा, आरम्भसदृशोदयः = उपक्रमानुरूपफलसिद्धिः (च) आसीत्—इति शेषः । १५

(घ) अन्वयः—तपोदानसमुद्भवं (यत्) पुण्यं (तत्) लोकान्तरमुखम्, शुद्धवंश्या सन्ततिः हि इह परत्र च शर्मणे (भवति) ।

व्याख्या—तपोदानसमुद्भवं = तपस्यादि-यज्ञ-व्रत-दानादिकारणकं, (यत्), पुण्यं = मुकृतं, (तत्), लोकान्तरमुखं = परलोकमुखकारकम्, अस्तीति शेषः । शुद्धवंश्या = पवित्रकुलोत्पन्ना, सन्ततिः = सन्तानः, हि = यतः, इह = अस्मिन् लोके, परत्र च = परलोके च, शर्मणे = सुखाय, भवतीति शेषः । १६

(ङ) अन्वयः—राजन् ! आत्मनः सिद्धिम् अदूरवर्तिनीं विगणय । यत् कल्याणी इयं नाम्नि कीर्तिते (सति) एव उपस्थिता ।

व्याख्या—राजन् = हे नृप, आत्मनः = स्वस्य (पुत्रप्राप्तिरूपकार्यस्य), सिद्धिः = सफलताम्, अदूरवर्तिनीं = शीघ्रभाविनीम्, विगणय = जानीहि । यत् = यस्मात् कारणात्, कल्याणी = मङ्गलमूर्तिः, इयं = पुरोवर्तिनी (वेनुः), नाम्नि = स्वकीयनन्दिनीत्यभिधाने, कीर्तिते एव = कथिते सत्येव, उपस्थिता = उपागता ॥ २७

४—वागर्थाविव—वाक् च अर्थश्च वागर्थौ (द्वन्द्व०), वागर्थौ इव इति वागर्थाविव (केवल०) । पावर्तापरमेश्वरौ—पार्वती च परमेश्वरश्च पावर्तापरमेश्वरौ (द्वन्द्व०) । मनीषिणां—मानसः ईषिणः मनीषिणः तेषाम् (प० त०) । महीक्षितां—महीं क्षियन्ति (ईशते) इति महीक्षितः, तेषां (उपपद०) । सदृशागमः—सदृशः आगमः (शास्त्रः), यस्य सः (बहु०) । तपोदानसमुद्भवं—समुद्भवति अस्मात् इति समुद्भवः (कारणम्) । तपश्च

दानञ्च इति तपोदाने (द्वन्द्व०), तपोदाने समुद्भवो यस्य तत् (बहु०) ।
अदूरवर्तिनी—न दूरम् अदूरम् (नञ०), अदूरे वर्तते अदूरवर्तिनी ताम्
(उपपद०) ।

५—(अनयोस्तरं पर्यालोचने (पृ० ४) द्रष्टव्यम्)

६—(अस्योत्तराणि अस्मत्संपादितायां “छन्दोविशतिकायां” द्रष्टव्यानि)

द्वि० प्रश्नपत्रम् ई० १९७२

१ अधोलिखितेषु पद्येषु स्वेच्छया केषांचित् त्रयाणां पद्यानामनुवादः

हिन्दीभाषया कार्यः—

(क) मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।

प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥ ३

(ख) तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।

हेमनः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा ॥ १०

(ग) जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः ।

अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः मुखमन्वभूत् ॥ २१

(घ) स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान् परिणेतुः प्रसूतये ।

अप्यर्थकामो तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः ॥ २५

(ङ) स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ ।

प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव ॥ ३६

२ अधोलिखितेषु केषांचित् त्रयाणां संस्कृतभाषया व्याख्या कार्या— २४

(क) तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः ।

दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिघाविव ॥ १२

(ख) सेना परिच्छिद्यस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम् ।

शास्त्रेण्वकुण्ठिता बुद्धिर्मीर्वी धनुषि चातता ॥ १९

(ग) स वेलावप्रवलयीं परिलीकृतसागराम् ।

अनन्यशासनामुर्वी शशासैकपुरोमिव ॥ ३०

(घ) ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला ।

विभ्रती श्वेतरोमाङ्गं सन्ध्येव शशिनं नवम् ॥ ८३

२ रघु० प्रश्नो०

(ङ) वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम् ।

विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि ॥ ८८

- ३ उपर्युक्तेषु श्लोकेषु केषांचित् त्रयाणां स्थूलाक्षरैर्मुद्रितानां समास-
नामानि लेख्यानि । ६
- ४ अधोलिखितेषु पदेषु सन्धिविच्छेदं दर्शयित्वा संस्कृते पर्यायो लेख्यः— १२
सूत्रस्येव, क्षीरनिघाविव, ह्यग्नौ, ललाटोदयम्, रोमाङ्कम्, अप्यर्थधर्मौ ।
- ५ दिलीपस्य वशिष्ठाश्रमगमनस्य वर्णनं क्रियताम् । १४
अथवा—दिलीपवशिष्ठयोः संवादो वर्ण्यताम् ।
- ६ अधोर्निर्दिष्टेषु छन्दःसु केषांचित् चतुर्णां लक्षणोदाहरणानि लेख्यानि— २०
उपजातिः, मालिनी, शादूँलविक्रीडितम्, शिखरिणी, अनुष्टुप्, हरिणी,
इन्द्रवज्रो ।

प्रश्नोत्तराणि

१९७२

१—(क) अल्पज्ञ होते हुए भी कवि के यश को प्राप्त करने के
अमिलापी मैं (कालिदास, रघुकुल के वर्णन करने में कहीं) उसी तरह
हास्यास्पद न हो जाऊँ, जैसे लम्बे पुरुष से पाने योग्य फल में लोभ से हाथों
को निरर्थक ऊँचा करने वाला (उठाने वाला) बौना (नाटा) पुरुष हंसी
का पात्र बन जाता है ॥ ३

(ख) गुण-दोषों को पहचानने वाले सद्-असत् (नीर-क्षीर) विवेकी
विद्वान् ही मेरे (कालिदास के) इस काव्यात्मक प्रबन्ध को जानने के
अधिकारी हूँ, क्योंकि सोने की शुद्धि (खरापन) अथवा किसी लोहे आदि की
मिलावट (खोटापन) अग्नि में डालने पर ही देखी जाती है ॥ १०

(ग) महाराज दिलीप भय से रहित (निडर) होते हुए अपने
शरीर की रक्षा करते थे, नीरोग होते हुए धर्म-कीर्ति की सेवा करते थे,
लोभ से विमुक्त (निर्लोभी) होते हुए धन-संग्रह (खजाने की वृद्धि)
करते थे तथा बिना आसक्त होते हुए सुखों का अनुभव करते थे ॥ २१

(घ) मनुक्त लोक-मर्यादा के लिये ही दण्ड देने योग्य अपराधी को दण्ड
देने से तथा सन्तानोत्पत्ति के लिये ही विवाह करने से बुद्धिमान् राजा
दिलीप के अर्थ और काम दोनों धर्मरूप ही थे ।

लोकमर्यादामाह मनुः--“अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा ..” निरपराधी को दण्ड देने से और अपराधी को दण्ड नहीं देने से राजा लोक में निन्दित होता है.....” ॥ २५

(ड) मनोहर (खुटुर-खुटुर) शब्द करने वाले रथ पर वर्षाकालीन मेघ पर विद्युल्लता और ऐरावत हाथी के समान बैठे हुए वे दोनों विद्युल्लता के समान चमकती हुई सुदक्षिणा और ऐरावत के समान विशाल काय पराक्रमी राजा दिलीप गुरु वसिष्ठ के आश्रम को जा रहे थे ॥ ३६

२—(क) शुद्धमति = दोषरहिते (निष्कलङ्के), तदन्वये = मनुकुले, शुद्धिमत्तरः = अतीवपूतः, राजेन्दुः = मूपचन्द्रः (राज-श्रेष्ठः), दिलीपः इति = दिलीपनाम्ना प्रसिद्धः, क्षीरनिर्घा = दुग्धसमुद्रे, इन्दुः इव = चन्द्रः इव, प्रसूत = जातः ॥ १२

(ख) तस्य = राज्ञः दिलीपस्य, सेना = चतुरङ्गबलम्, परिच्छदः = उपकरणम् (छत्रचामरादितुल्यम् आसीत्) । अर्थसाधनं = प्रयोजननिवर्तनम्, द्वयम् एव = द्वितयम् एव । (तत्र एकम्—) शास्त्रेषु = राजनीत्याद्यागमेषु, अकुण्ठिता = अव्याहता, बुद्धिः = मतिः, च = द्वितीयम्, घनुषि = कार्मुके, आतता = आरोपिता, मौर्वी = ज्या । नीतिपुरःसरमेव तस्य सौर्यम् आसीदिति भावः ॥ १६

(ग) सः = महाराजो दिलीपः, वेलावप्रबलया = सागरतटप्राकारवेष्टनां, परिस्त्रीकृतसागरां = दुर्वेष्टनीकृतसमुद्राम्, अनन्यशासनां = स्वेतरशासनरहिताम्, उर्वीम् = पृथिवीम्, एकपुरीम् = एकनगरीम्, इव = यथा, शशास = शासितवान् ॥ ३०

(घ) पल्लवस्निग्धपाटला = किसलयमसृणश्वेतमिश्ररक्तवर्णा (नन्दिनी नाम घेनुः, सन्ध्यापक्षेऽपीदमेव विशेषणम्), ललाटोदयं = भालस्थलोत्पतिकम् (भालोद्भूतम्), अभुग्नम् = ईषत्कुटिलम्, श्वेतरोमाङ्कं = धवललोम-लक्षणम्, विभ्रती = दधाना, नवं = नूतनं (द्वितीयातिथ्यावुदितम्), शशिनं = चन्द्रम् (विभ्रती = दधाना), सन्ध्या इव = सन्ध्याकाल यथा, (सा नन्दिनी वनात् प्रत्याजगाम इति शेषः) । ८३

(३) (हे राजन् !) वन्यवृत्तिः = कन्दमूलाद्याहारः (सन्), इमां = निकटवर्तिनीम्, गां = धेनुम् (नन्दिनीम्), शश्वत् = सहसा, आत्मानु-गमनेन = स्वानुसरणेन, अभ्यसनेन = अभ्यासकरणेन, विद्यामिव = शास्त्रमिव, प्रसादयितुं = प्रसन्नां कर्तुम्, अर्हसि = योग्यो भवसि ॥ ८८

३—तदन्वये—तस्य अन्वयः तदन्वयः तस्मिन् (ष० त०) । वेला-वप्रवलय्यां—वप्राणां (प्राकाराणां) वलयाः (वेष्टनानि) वप्रवलयाः (ष० त०), वेलाः (कूलानि) एव वप्रवलया यस्या, सा वेलावप्रवलया, ताम् (बहु०) । ललाटोदयं—ललाटे उदयो यस्य, तत् (बहु०) । वन्यवृत्तिः—वन्यं प्रतिः (वर्तनं) यस्य, सः (बहु०) ।

४—सूत्रस्येव—सूत्रस्य इव = तन्त्रोः यथा । क्षीरनिधाविव—क्षीरनिधौ इव = दुग्धसमुद्रे यथा । ह्यग्नौ—हि अग्नी = यतः बह्वी । ललाटोदयं—ललाटे उदयम् = भालोद्भूतम् । रोमाङ्गम्—रोम अङ्गम् = लोमचिह्नम् । अप्यर्थकामौ—अपि अर्थकामौ = अपि-समच्चये, अर्थः—घनं, कामः—विषयेच्छा चेति, तदारूपपुरुषार्थावित्यर्थः ।

५—(अनयोरुत्तरं पर्यालोचने (पृ० ५, ७) द्रष्टव्यम्) ।

६—(अस्योत्तराणि अस्मत्सम्पादितायां “छन्दोविशतिकायां” द्रष्टव्यानि)

द्वि० प्रश्नपत्रम् ई० १२७३

१ अधोलिखितेषु पद्येषु स्वेच्छया केषांचित् त्रयाणां पद्यानामनुवादः
हिन्दीभाषया कार्यः—

२४

(क) अथवा कृतवाग्द्वारे वंशोऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः ।

मणी वज्रसमुत्कीर्णं सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥ ४

(ख) व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्राङ्मुमंहाभुजः ।

आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाधितः ॥ १३

(ग) स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ ।

प्रावृषेण्यं पयोद्राहं विद्युदरावताविव ॥ ३६

(घ) विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम् ।

अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ॥ ५६

प्रश्नोत्तरी

२१

(ङ) सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः ।

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः ॥ ६८

२ अधोलिखितेषु केषांचित् त्रयाणां संस्कृतमापया व्याख्या कार्या— २४

[क] प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ २४

[ख] कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि ।

तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाऽधिपः ॥ ३२ ॥

[ग] किन्तु वध्वां तवेतस्यामदृष्टसदृशप्रजम् ।

न मामवति सद्दीपा रत्नसूरपि मेदिनी ॥ ६५

[घ] इति विज्ञापितो राज्ञा ध्यानस्तिमितलोचनः ।

क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव हृदः ॥ ७३

३ उपर्युक्तेषु श्लोकेषु केषांचित् त्रयाणां स्थूलाक्षरैर्मुद्रितानां विग्रहप्रदर्शनपूर्वकं समासनामानि लेख्यानि । ६

४ अधोलिखितेषु पदेषु सन्धिविच्छेदं दर्शयित्वा संस्कृते पर्यायो लेख्यः— १२

मनोर्वर्त्मनः, फलानुमेयाः, यथौषधम्,

सेनापरिवृताविव, मनोरथः, बुधोपमः ।

५ सुदक्षिणादिलीपयोर्मागंगमन वर्ण्यताम् । १४

अथवा—रघुवंशे दिलीपस्य वर्णनं क्रियताम् ।

६ अधोनिर्दिष्टेषु छन्दःसु केषांचित् चतुर्णां लक्षणोदाहरणानि लेख्यानि—२०

वंशस्थः, आर्या, उपेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बितम्,

स्रग्धरा ।

प्रश्नोत्तराणि

१९७३

१—(क) अथवा मेरे (कालिदास) के लिये यह मार्ग सरल है कि प्राचीन वाल्मीक्यादि कवियों ने रामायणादि काव्य में रघु-कुल-चरित लिख कर (लेखकों के लिये) वाणी का द्वार पहले से ही खोल दिया है, अतः उसमें प्रवेश करना और रघु-वंशी का वर्णन करना मेरे लिये अब

वैसे ही सुगम है जैसे हीरे की कनी (यंत्रविशेष) से वीधी (छेदी) हुई मणि में डोगा पिरोना (घुसाना) सरल है ॥ ४

(ख) विशाल वृक्षस्थल (छाती) वाले, बँल (सांड़) के कन्धों के समान (मोटे-चौड़े) कन्धों वाले, शाल वृक्ष के समान लम्बे-लम्बे (आजानु बाहु) बाहों वाले तथा अपने काम करने में सक्षम शरीर को धारण किये हुए जैसे क्षत्रियों के धर्म-पराक्रम हो वैसे ही महाराज दिलीप थे ॥ १४

(ग) (अस्योत्तरं ७२ वर्षे द्रष्टव्यम्) ।

(घ) (,, ७४ ,, ,,) ।

(ङ) (,, ७४ ,, ,,) ।

२—(क) प्रजानां = जनानाम्, विनयाधानात् = शिक्षाकरणात् (सन्मार्गप्रवर्तनात्) । रक्षणात् = भयहेतुभ्यः त्राणात् (पालनात्, आपन्निवारणाच्च) । भरणात् = अन्नपानादिभिः पोषणात्, अपि = समुच्चये, सः = महाराजो दिलीपः, पिता = (पातीति पिता-) रक्षिता, (अभूत्) । तासां = स्वशासनाधीनां जनानाम्, पितरः = जनकाः (तु), जन्महेतवः = उत्पत्तिकर्तारः, केवलम् = मात्रम् (प्रजानां पितरस्तु तेषाम् उत्पत्तिमात्रकारणानीति भावः) ॥ २४

(ख) वसुधाधिपः = पृथिवीपतिः महाराजो दिलीपः, अवरोधे = अन्त-पुरे (स्त्री-आगारे), महत्यपि बाहुल्ये सत्यपि, मनस्विन्या = दृढचित्तया (पतिचित्तानुवृत्त्यादिनिर्वन्धक्षमया) । तथा = सुदक्षिण्या, लक्ष्म्या च = राज्यश्रिया च, आत्मानं = स्वम्, कलयन्तं = भाग्यवन्तम्, मेने = ज्ञातवान् ॥ ३२

(ग) किन्तु, तव = भवतः, एतस्यां = पुरोवर्तिन्याम्, वध्वां = स्नुषायां (सुदक्षिण्यायाम्), अदृष्टसदृशप्रजम् = अनवलोकितानुरूपसन्ततिम्, मां = दिलीपम्, सद्विपा अपि = भूखण्डविशेषैः सह वर्तमानाऽपि, रत्नसूः = मणिप्रसवनी (अपि), मेदिनी = पृथिवी, न = नहि, अवति = प्रीणाति । रत्नसूरस्थियं वसुधा पुत्ररत्नाभाववता न मां प्रीणातीति भावः ॥ ६५

(घ) इति = इत्थं प्रकारेण, राज्ञा = नृपेण (दिलीपेन), विज्ञापितः = निवेदितः, ऋषिः = सत्यवाक् (वसिष्ठः), ध्यानस्तिमितलोचनः = चिन्तन-

निश्चलनयनः (सन्), क्षणमात्रं = मुहूर्तमात्रं (किञ्चित् कालं), सुप्तमोतः = निद्रितमत्स्यः, ह्रदः इव = अगाधजलः (सरसी) इव, तस्थी = स्थितः ॥ ७३

३—जन्महेतवः—जन्मतः हेतवः जन्महेतवः (प० त०) । अदृष्ट-सदृशप्रजम्—न दृष्टा अदृष्टा (नञ् स०) । सदृशी चासौ प्रजा सदृशप्रजा (कर्मधा०) । अदृष्टा सदृशप्रजा येन सः अदृष्टसदृशप्रजः, तम् (बहु०) । (अदृष्टा सदृशो प्रजा येन, इति विग्रहे तु 'अदृष्टासदृशप्रजम्' इत्यशुद्धं पदं स्यात्) । सुप्तमानः । ध्यानस्तिमितलोचनः—(द्र० पृ० २६)

४—मनोवर्त्मनः—मनः वर्त्मनः = ऋषि-मार्गात् । फलानुमेयाः—फल अनुमेयाः = कार्येणानुमातुं योग्याः । यथौषधम्—यथा औषधम् = भेषजमिव । सेनापरिवृताविव—(द्र० पृ० २६) मनोरथैः—मनः रथैः = आशाभिः । बुधोपमः—बुधः उपमः = बुधः (चन्द्रपुत्रः पण्डितो वा) उपमा यस्य सः । चन्द्रपुत्रसदृशः पण्डितसदृशो वा ।

५—(अनयोत्तरं पर्यालोचने (पृ० ४, ५) द्रष्टव्यम्) ।

६—(अस्योत्तराणि अस्मत्सम्पादितायां 'छन्दोविशतिकायां' द्रष्टव्यानि) ।

द्वि० प्रश्नपत्रम् ई० १९७४

१ अधोलिखितेषु पद्येषु स्वेच्छया केषाञ्चित् त्रयाणां पद्यानामनुवादः २४

हिन्दीभाषया कार्यः—

[क] प्रजानामेव मृत्युर्थं स ताम्यो बलिमग्रहीत् ।

सहस्रगुणमुत्सृष्टमादत्ते हि रसं रविः ॥ १८

[ख] स वेलावप्रवलयाम् परिखीकृतसागराम् ।

अनन्यशासनामुर्वीं शशासकपुरीमिव ॥ ३०

[ग] मा भूदाश्रमपीडेति परिभेयपुरःसरी ।

अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव ॥ ३७

[घ] काऽप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः ।

हिमनिमुक्तयोयोगि चित्राचन्द्रमसोरिव ॥ ४६

[ङ] इति विज्ञापितो राज्ञा ध्यानस्तिमितलोचनः ।

क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः ॥ ७३

२ अधोलिखितेषु केषांचित् त्रयाणां संस्कृतभाषया व्याख्या कार्या— २४

[क] क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥ २

[ख] तयोर्जगृहतुः पादात् राजा राज्ञी च मागधी ।
तौ गुरुगुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः ॥ ५७

[ग] सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः ॥ ६८

[घ] वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम् ।
विद्यामभ्यसनेनैव प्रसादयितुमर्हसि ॥ ८८

३ उपर्युक्तेषु श्लोकेषु केषांचित् त्रयाणां स्थूलाक्षरैर्मुद्रितानां विग्रहप्रदर्शनं पूर्वकं समासनामानि लेख्यानि । ६

४ अधोलिखितेषु पदेषु सन्धिविच्छेदं दर्शयित्वा संस्कृतेन पर्यायो लेख्यः—
शास्त्रेष्वकुण्ठिता, अपत्यैरिव, विजितारिपुरः, परत्रेह, इवाचलः, ह्यग्नी १२

५ दिलीपविशिष्टयोः संवादो वर्ण्यताम् । १४
अथवा—रघुवंशे रघूणां वर्णनं क्रियताम् ।

६ अधोनिदिष्टेषु छन्दःसु केषांचित् चतुर्णां लक्षणोदाहरणानि लेख्यानि—
अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपजाति, द्रुतविलम्बितम्, मालिनी,
शिखरिणी, शार्ङ्गलविक्रीडितम् । २०

प्रश्नोत्तराणि

१९७४

१—(क) महाराज दिलीप प्रजाग्रों की मलाई के लिये ही प्रजाग्रों से कर (मालगुजारी) लेते थे । जैसे कि सूर्य (बादल द्वारा) पृथ्वी पर हजार गुना जल बरसाने (मर्त्यलोकवासी की मलाई) के लिये ही पृथिवी पर से (अपनी रश्मि द्वारा) जल लेते हैं—खींचते हैं ॥ १८

(ख) उस महाराज दिलीप ने समुद्र को ही परकोटा (चाहार दिवाली) बनाने वाली और चारों ओर से समुद्र को ही परिखा (महानाला) के रूप में रखने वाली तथा किसी राजा से शासित नहीं होने वाली भारतवसुन्धरा (अखंड भारत) का एक नगरी के रूप में शासन किया । ३०

(ग) गुरु वसिष्ठ के आश्रमवासी जनों को कष्ट न हो इस लिये थोड़ी ही पलटनों को साथ में ले कर ही वसिष्ठाश्रम को जाते हुए वे दोनों राजा-रानी अपने प्रताप से ऐसे प्रतीत होते थे, मानो चारों ओर से बड़ी फौजों से घिरे हुए से जा रहे हों ॥ ३७

(घ) गुरु वसिष्ठ के आश्रम को जाते हुए रानी सुदक्षिणा के साथ स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण किये हुए राजा दिलीप ऐसे शोभ रहे थे जैसे शिशिर ऋतु के बाद चैत्री पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा शोभते हैं ॥ ४६

(ङ) इस प्रकार राजा दिलीप से निवेदित होने पर महर्षि वसिष्ठ जी आँखें मून्द कर कुछ देर के लिये सोई हुई मछली वाले अगाध जल की तरह शान्त रहे-समाधिस्थ हो गये । (राजा दिलीप को पुत्र न होने के प्राक्तन कारण का ध्यान करने लगे) ॥ ७३

२—(क) सूर्यप्रभवः = मास्करोत्पन्नः. वंशः = कुलम्, क्व = कुत्र ?, अल्प-विषयाः = ईषदज्ञेयार्था (मम), मतिश्च = बुद्धिश्च, क्व = कुत्र ?, (उभयोः महदन्तःम्) । (सोऽहम्), मोहात् = अज्ञानात्, उडुपेन = प्लवेन (लघुतर-नौकया, चर्मविनद्धेन यानपात्रेण वा), दुस्तरं = दुःखेन तरितुं शक्यं, सागरं = समुद्रम्, तितीर्षुः = तरितुम् इच्छुः, अस्मि = भवामि । अल्पसाधनैः अधिकार-म्भः न सुकरः इति भावः ॥ २

(ख) मागधी = मगध-राजपुत्री, राज्ञी = राजपत्नी, (सुदक्षिणा), राजा च = भूपतिश्च (दिलीपश्च), तयोः = अरुन्धती-वसिष्ठयोः, पादान् = चरणान्, जगृहुः = गृहीतवन्तौ, । गुरुपत्नी = आचार्यभार्या (अरुन्धती), गुरुश्च = आचार्योऽपि (वसिष्ठोऽपि), तौ = सुदक्षिणा-दिलीपौ, (कर्भभूतौ), प्रीत्या = हर्षेण, प्रतिनन्दतुः = अभिनन्दनं चक्रतुः, आशीर्वादादिभिः इति शेषः ॥ ५७

(ग) इज्याविशुद्धात्मा = यागविशुद्धचेतनः, प्रजालोपनिमीलितः = सन्तत्यभावकृतनिमीलितः, सः = एतादृशः, अहं = दिलीपः, लोकालोकः = चक्रवालनामकः, अचलः इव = पर्वतः इव, प्रकाशकश्च = द्योतकश्च (देव-ऋणविमोचनात् इति भावः) । अप्रकाशश्च = अव्यक्तरूपश्च (पितृऋणवि-

मोचनात् इति भावः) (अस्मि) । लोकालोकनामकः पर्वतोऽपि अन्तःसूर्य-
सम्पर्कात् सप्रकाशः, वह्निः तमोव्याप्त्या अप्रकाशश्चेति मन्तव्यम् ।

(ध) (हे राजन् !), वन्यवृत्तिः = कन्दमूलाद्याहारः (सन्) । इमां =
पुरोवर्तिनीम्, गां = नन्दिनीनामिकां धेनुम्, शश्वत् = सदा, आत्मानुगमनेन =
स्वानुशरणेन, अभ्यसनेन = अनुष्ठानतः अभ्यासेन, विद्याम् इव = शास्त्रम् इव,
प्रसादयितुं प्रसन्नां कर्तुम्, अहंमि = योग्योऽसि ॥ ८८

३—परिखीकृतसागरां—परितः खाताः परिखाः, न परिखाः अपरिखाः
(नक्०), अपरिखाः परिखाः सम्पद्यमानाः कृताः इति परिखीकृताः । परिखी-
कृताः सागराः यस्याः सा परिखीकृतसागराः, ताम् (बहु०) । सेनापरिवृत्तौ-
सेनया परिवृत्तौ (अन्वितौ) । सेनापरिवृत्तौ [तृ० त०] । ध्यानस्तिमित-
लोचनः—स्तिमिते (निमीलिते) लोचने यस्य, सः (बहु०), ध्यानेन
स्तिमितलोचनः ध्यानस्तिमितलोचनः (तृ० त०) । सुप्तमीनः—सुप्ताः
मीनाः यस्मिन्, सः (बहु०) ।

४—शास्त्रेष्वकुण्ठिता—शास्त्रेषु अकुण्ठिता = राजशास्त्रेषु अव्याहता
(बुद्धिः) । अपत्यैरिव—अपत्यं इव = सन्तत्यैः यथा । विजितारिपुरः—
विजित अरिपुरः = स्वाधीनकृतशत्रुनगरः । परब्रह्म—परत्र इह = परलोके
अस्मिन् लोके । इवाचलः—इव अचलः = यथा पर्वतः । ह्यग्नौ—हि
अग्नौ = यतः बह्नी ।

५—(अनयोर्हतर (पृ० ५, ७) पर्यालोचने द्रष्टव्यम्)

६—(अस्थोत्तराणि अस्मत्सम्पादितायां 'छन्दोर्विशतिकायां' द्रष्टव्यानि)

द्वि० प्रश्नपत्रम् ई० १९७५

३

१ निम्नाङ्कितश्लोकेषु यथेच्छं केषांचित् त्रयाणां श्लोकानां हिन्दी-
भाषया अनुवादः कार्यः—

२४

[अ] व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः ।

आत्मकर्मक्षमं देहं आत्रो धर्मं इवाश्रितः ॥ १३

[आ] शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।

वादं कये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥ ८

प्रश्नोत्तरी

२७

[३] जुगोपात्मानमश्रुतो भेजे धर्ममनातुरः ।
अगृह्णुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत् ॥ २१

[६] श्रेणीवन्वाद्धितन्वद्विरस्तम्भां तोरणस्रजम् ।
सरतः कलनिर्हादैः क्वचिदुन्मिताननी ॥ ४१

[७] असह्यपीडं भगवन्नुणमन्त्यमवेहि मे ।
अरुंतुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः ॥ ७१

२ निम्नाङ्कितश्लोकेषु त्रयाणां श्लोकानां संस्कृतभाषया व्याख्यान-
मपेक्ष्यते—

२४

[क] अथवा कृतवाग्द्वारे वंशोऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः ।
मणी वज्रसमुत्कीर्णं सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥ ४

[ख] सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् ।
विश्वासाय विहङ्गानामालवालाम्बुपायिनाम् ॥ ५१

[ग] नूनं मत्तः परं वंस्याः पिण्डविच्छेददक्षिणः ।
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः ॥ ६६

[घ] भुवं कोष्णेन कुण्डोघ्नी मेघ्येनावभूथादपि ।
प्रसवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्तिना ॥ ८४

३ उपर्युक्तपद्येषु स्थूलाक्षरमुद्रितेषु केषांचित् त्रयाणां विग्रहं प्रदक्ष्यं
समास-नामानि लिखत ।

४ निम्नाङ्कितपद्येषु चतुर्णां सन्धि-विच्छेदं दर्शयता संस्कृतेन पर्यायो
लिख्यताम्—

१२

सेकान्ते; आलवालाम्बुपायिनाम्; गुप्ततमेन्द्रियः; वंशोऽस्मिन्;
गमिष्याम्युपहास्यताम्; आसीन्महीक्षिताम्; प्रणवश्छन्दसामिव ।

५ वसिष्ठस्याश्रमवर्णनं क्रियताम् ।

१४

अथवा—महाकविकालिदासस्य कः कालः ? इति लिख्यताम् ।

६ अधस्तादङ्कितेषु छन्दःसु केषांचित् चतुर्णां लक्षणानि उदाहरणानि
च लिख्यन्ताम्—

२०

प्रह्विणी; वसन्ततिलका; हरिणी; मन्दाक्रान्ता; स्रग्धरा; वंशस्थ;
उपेन्द्रवज्रा ।

प्रश्नोत्तराणि

१९७५

१—(अ) अस्योत्तरं ७३ वर्षे द्रष्टव्यम् ।

(आ) जो बाल्यावस्था में गुरुकुल में जाकर विद्याभ्यास करते थे और युवा होने पर राजोचित विषयों का भोग करते थे और बृद्ध होने पर वानप्रस्थी होते थे (ऋषि-मुनियों के साथ वन में जाकर रहते तथा प्राणान्त समय में परमात्मा का ध्यान करते हुए शरीर का त्याग करते थे (मैं कालिदास उन्हीं रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा ॥ ८

(इ) राजा दिलीप भयरहित (निडर) होकर शरीर की रक्षा करते थे, रोगरहित होकर (स्वस्थ मन से) धर्म-कीर्ति की सेवा करते थे, लोभविमुख (निर्लोभी) होकर धनों का संचय करते थे तथा विना आसक्त होते हुए सुखानुभव करते थे ॥ २१

(ई) राजा दिलीप जब वसिष्ठाश्रम को जा रहे थे उस समय उन्हें तपोवन के आकाश में मनोहर शब्द करते पंक्तिबद्ध हो कर उड़ते हुए हंसों के पंक्तिपुंज ऐसे दिखाई पड़ते थे, मानो विना खंभे के ही फूलमालाओं से सजा-सजाया तोरण हो ॥ ४१

(उ) राजा दिलीप ने कहा—हे भगवन् ! गुरुवर ! मेरे अन्तिम तृतीय पितृ-ऋण को स्नान से रहित हाथी के मर्मस्थल को दुःख देनेवाला बन्धन-स्तम्भ के समान दुःसह व्यथा देनेवाला समझें । भाव यह है कि गर्मी से व्याकुल बंधा हुआ हाथी जैसे स्नान के लिये छटपटाता है, वैसे ही मैं पितृऋण से मुक्त करनेवाली संतति के लिये व्याकुल हूँ ॥ ७१

२—(क) अथवा = पक्षान्तरे, पूर्वसूरिभिः = प्राच्यकविभिः (वाल्मीक्यादिभिः), कृतवाग्द्वारे = रचितकाव्यप्रवेशे, अस्मिन् = अत्र, वंशे = अन्वाये (रघुकुले), वज्रसमुत्कीर्णं = मणिबन्धकसूचीविशेषविद्धे, मणौ = रत्ने, सूत्रस्य तन्त्रोः, इव = यथा, मे = मम (कालिदासस्य), गतिः = सञ्चारः अस्ति = विद्यते । (वर्णनीये रघुवंशे मम वाक्प्रसरोज्ज्वालीत्यर्थः ।) ॥ ४

(ख) मुनिकन्याभिः = ऋषिबालिकाभिः (सेकत्रीभिः), सेकान्ते = वृक्षमूलसेचनावसाने, आलबालाम्बुपायिनां = जलावपप्रदेशजलपानशीलानाम्,

विहङ्गानां = पक्षिणाम्, विश्वासाय = विश्रम्भाय, तत्क्षणोज्झितवृक्षकं = तत्से-
चनसमयपरित्यक्तह्रस्वपादपम्, (महर्षेः आश्रमं सपत्नीको दिलीपः सायं
प्रापत् ।)

(ग) मत्तः परं = मदनन्तरम्, पिण्डविच्छेददर्शिनः = पिण्डदानविच्छेद-
मुत्प्रेक्षमाणः, वंश्याः = पितरः (सखेदाः सन्तः), स्वधासंग्रहतत्पराः = पितृ-
भोज्यसंग्रहणासक्ताः, आद्वे = पितृकर्मणि, प्रकामभुजः = पर्याप्तभोजिनः,
नूनं = सत्यं (निश्चितं), न = नहि, (भवन्ति) ॥ ६६

(घ) कोष्णेन = किञ्चिदुष्णेन, अवभृथादपि = यज्ञाङ्गभूतस्नानादपि,
मद्येन = पवित्रेण, वत्सालोकप्रवर्तिनां = शकुत्करिपुत्रदर्शनप्रवहता, प्रश्नवेन =
क्षीरामिस्मन्दनेन, भुवम् = पृथिवीम्, अभिवर्षन्ती = सिञ्चन्ती, कुण्डोघ्नी =
पिठरसदृशापीनवती (नन्दिनी वनात् आजगाम) ॥ ६४

३—व्यूढोरस्कः—व्यूढं (विपुलम्) उरः यस्य सः (बहु०) ।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां—शिशोर्भावः शैशवं, तस्मिन् । अभ्यस्ता विद्या येः तेः
अभ्यस्तविद्याः, तेषाम् (बहु०) । तोरणस्रजम्—तोरणस्थ स्रक् (माला)
तोरणस्रक्, ताम् (ष० त०) । असहपीडम्—असह्या पीडा यस्मिन्, तत्
(बहु०) ।

४—सेकान्ते—सेक अन्ते = सेचनावसाने । आलबालाम्बुपायिनाम्-
आलवाल अम्बुपायिनाम् । आलवालस्थलजलपानशीलानाम् । गुप्ततमेन्द्रि-
याः—गुप्ततम इन्द्रियाः = अत्यन्तनियमितेन्द्रियाः । वंशेऽस्मिन्—वंशे
अस्मिन् = कुले अत्र । गमिष्याम्युपहास्यताम्—गमिष्यामि उपहास्यताम् =
प्राप्स्यामि उपहसनीयताम् । आसीन्महीक्षितां—आसीत् महीक्षिताम् =
अभवत् पृथिवीपतीनाम् । प्रणवश्छन्दसामिव—प्रणवः छन्दसाम् इव =
ओङ्कारः वेदानां यथा ।

५—[अनयोरुत्तरं पर्यालोचने (पृ० ६, ३) द्रष्टव्यम्]

६—(अस्योत्तराणि अस्मत्सम्पादितायां छन्दोविशतिकायां द्रष्टव्यानि) ।



रघुवंशेश्वर-प्रश्नपत्राणि

प्रथमं पत्रं १९७१

(लघुकौमुद्यां प्रश्नाः)

- १ पावकः, प्रष्ठीहः, चागीशः, नृपाहि, पुना रमते, स शम्भुः,—एषु केऽपि पञ्च प्रयोगाः सूत्रविशेषनिर्देशपूर्वकं साधनीयाः । १५
 - २ सर्वे, क्रोष्टूनाम्, मत्याम्, वारिणे, धुक्षु, त्वया, इयम्, पयांसि,— एतेषु केऽपि पञ्च प्रयोगाः साध्याः । १५
 - ३ वमूव, अगादीत्, ऐधिषत्, विदाङ्करोत्, अध्यगीष्ट, अनिजत्, अजनि, ग्रहीता, अतिष्ठिपत्,—एतेषु स्वेच्छया पञ्च प्रयोगान्, प्रधानसूत्रनिर्देशपूर्वकं साधयत् । २०
 - ४ चिकीर्षति, वाव्रज्यते, पुत्रीयति, रथेन सञ्चरते, उपरमति, मृज्यः, कारकः, श्रयति हरि श्रीः, अन्यथाकारम्,—एषु केषाञ्चित् पञ्चानां साधनं कार्यम् । १५
 - ५ ग्राममजां नयति, अग्नये स्वाहा, मोक्षे इच्छास्ति, अध्यात्मम्, पञ्च-गवधनः, अहोरात्रः, महायशस्कः पितरौ, गवाक्षः,—एतेषां षण्णामेव साधु साधनं लिखत । १८
 - ६ रैवतिकः, वाराणसेयम्, शाब्दिकः, पौरोहित्यम्, अग्नीभवति, गोपी, चन्द्रमुखी, युवतिः,—एषु ससूत्रनिर्देशं पञ्च प्रयोगान् संसाध्य 'तुल्यास्यप्रयत्नं सर्वर्णम्' इति सूत्रस्य सोदाहरणं अर्थं लिखत । १७
- (द्र० रामचन्द्रक्षा संपादित—“बनारस सोत्तरा प्रथमा प्रश्नावली” नवीन संस्करण १९७५)

(पाणिनीयप्रबोधे प्रश्नाः)

- १ कानि माहेश्वराणि सूत्राणि ? तेभ्यः कया रीत्या प्रत्याहारसिद्धिः भवति ? १०
- अथवा—बाह्याभ्यन्तरप्रयत्नयोः कति भेदास्सन्तीति तेषां नामानि सुस्पष्टं लिखत ।

प्रश्नपत्राणि

३१

- २ अधस्तनेषु केषामपि पञ्चानां सन्धि-विच्छेदं प्रदर्श्य सूत्रनिर्देशपूर्वकं साधयत । १५
- वेदाध्ययनम्, पुङ्ग्वेला, मानवायाहि, रणड्डक्का, विद्वांश्छात्रः, छद्मोऽष्टि, विष्णुस्त्राता ।
- ३ (क) हरि, भगवत्, पथिम्, विद्वस्, रुचि, गोदुह्, दधि,—एषु द्वयोः सर्वासु विभक्तिषु सर्वेषु वचनेषु च रूपाणि लिखत । १०
- (ख) गम्—स्था—श्रु—अस्—दा,—एषु केषाञ्चिच्चतुणामिव लुङि प्रथम-पुरुषतः आरभ्य उत्तमपुरुषपर्यन्तम् रूपाणि प्रदर्शयत । १०
- ४ सखायी, आत्मम्याम्, ऋत्विक्, वर्मणी, इमे, अष्टासु,—एषु कानपि चतुरः प्रयोगान् संसाध्य, १५
- विशत्याद्याः सदेकत्वे सर्वाः संख्येयसंख्ययोः, ।
संख्यार्थे द्विबहुत्वे स्तस्तासु चानवतेस्त्रयः ।
एषा कारिका व्याख्येया (द्र० संस्कृतव्याकरणम्) ।
- ५ टिड्ढाणन्० इन्द्रवरुण० इति सूत्रमविकलमुल्लिख्य रम्मोरुः, निर्म-
क्षिकम्, अतिमालः, ससीतः, हंसौ, द्वैमातुरः, पाणिनीयम्, दन्त्यम्,
कथम्, ग्रामतः—एतेषु स्वेच्छया पञ्च प्रयोगान् सविग्रहं समासानां
तद्धित—प्रत्ययानाञ्च नामोल्लेखपूर्वकं साधयत । २०
- ६ कामयते, जहि, रुन्धः, धेहि, जुहाण, अजीगणत्, प्रतिष्ठते, कारकः,
चिकीर्षा, स्मारं स्मारम्,—एषां मध्ये यथेच्छं षट्सु प्रयोगेषु विशेष-
सूत्रैर्विशेषकार्याणि प्रदर्श्य 'तव्यत्तव्यानीयरः' इति सूत्रं सोदाहरणं
व्याख्येयम् । २०

प्रथमं पत्रं १६७२

(लघुमीमुखां प्रश्नाः)

- १ सुदध्युपास्यः, कृष्णद्विः, चक्रि अत्र, उत्थानम्, संस्कर्ता, शिवोऽर्च्यः,
अहरहः एषु चत्वारः प्रयोगाः सूत्रनिर्देशपूर्वकं साधनीयाः । १५
- २ रामान्, सर्वेषाम्, मर्त्य, दध्ना, मघोनः, उपानत्, ददन्ति—एषु
कानिचित् चत्वारि रूपाणि साधयत । १५

- ३ अभूवन्, अगमत्, अचीकमत, जहि, पप्रतुः, नर्तिष्यति, सुनोति, उपस्करति, क्षिण्णि, कुर्वन्ति, अचकथत्—एषु चतुर्णां साधनं कार्यम् १२
- ४ जिघत्सति, वोभूयते, राजीयति, विजयते, विरमति, अलाभि, देयम्, माग्यः, कुम्भकारः, शोणः, चयः—एषां मध्ये पञ्चसु प्रयोगेषु विशेष-सूत्रविशेषकार्याणि प्रदर्शत । १५
- ५ हर्षि मजति, विप्राय गां ददाति, कटे आस्ते, उपशरदम्, राजपुरुषः, पीवँशलः, चित्रगुः, पाणिपादम्—एषां मध्ये चतुरः प्रयोगान् विशेष-सूत्रनिर्देशपूर्वकं साधयत । २०
- ६ आश्वपतम्, दैत्यः, दाक्षिः, नड्वलः, आस्माकीनः, शरण्यः, कुचरी, मृद्वी, अतिकेशी, वैदी—एषु त्रीन् प्रयोगान्, संसाध्य, संहिता-संयोग-पदसंज्ञा-विधायकानि सूत्राणि लिखत । २०

(द्र० “वनारस सोत्तरा प्रथमा प्रश्नावली । पं० रामचन्द्र झा सम्पादित नवीन संस्करण १९७५)

(पाणिनीयप्रबोधे प्रश्नाः)

- १ त-ट-वर्णयोः स्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नञ्च विलिख्य सवर्ण-पद-संज्ञा-विधायकयोः सूत्रयोः सोदाहरणमर्थं लिखत । १०
- अथवा—उदात्त-ह्रस्व-संज्ञाविधायकं सूत्रद्वयं प्रदर्श्य, सुप्-तिङ्-प्रत्या-हारी लेख्यौ ।
- २ अद्यस्तनेषु पञ्च प्रयोगान् सन्धिविच्छेदपूर्वकं साधयत— १५
- रामेच्छा, एकैकम्, हरेज्ज, प्रत्यङ्ङात्मा, कुण्ठितः, देवायिह, पुनारमते ।
- ३ (क) राम-त्रि-गो-रमा-वारि-एषु द्वयोः सर्वाणि रूपाणि लिखत । १०
- (ख) भू-पा-खाद्-पच्-कृ-दा-एषु त्रयाणामेव लोटि सर्वाणि रूपाणि प्रदर्शयत । १०
- ४ रामाय, हरो, राजः, अनड्वान्, युष्माकम्, तिस्रः—एषु कानपि चतुरः प्रयोगान् संसाध्य—‘सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु ०’ इत्यादि कारिका व्याख्येया १५
- ५ गन्त्री, ऐन्द्री, वामोरुः, उपशरदम्, नरसिंहः, पीताम्बरः राघवः, मागिनेयः, नैयायिकः, शालीयः, नाविकः—एषु पञ्च प्रयोगान् सवि-ग्रहं संसाध्य अव्ययं विभक्ति० इति सूत्रमविकलं लिखत । २०

- ६ अभूत्, शृणु, वृन्ति, विभ्यति, अचीकृतत्, अव्यापयति, जिघृक्षति,
शब्दायते, स्तुत्यः, नन्दनः—एषु यथेच्छं पञ्च प्रयोगाः साध्याः २०

प्रथमं पत्रं १९७३

(लघुकौमुद्यां प्रश्नाः)

- १ क-च-ऋ-वर्णानां स्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नञ्च विलिख्य, धातुब्रंशः,
शिवेहि, किमु उक्तम्, तच्छिवः, नृ—पाहि, पुना रमते, सैष दाशरथी
रामः, एषु केऽपि चत्वारः प्रयोगाः साधनीयाः । १५
- २ रामाणाम्, विश्वपः नृणाम्, सर्वस्यै, दध्ना, विश्वीहः, अष्टी, पुमात्,
धनूंषि, एषु कानिचित् चत्वारि रूपाणि साधयत । १५
- ३ भविता, आतीत्, आनचं, ऐधिषत्, उवोढ, अयुः, अदुग्ध, अजनि,
लोमिता, ग्रहीता, अजीगणत्, एषु चतुरः प्रयोगान् साधयत । १५
- ४ भावयति, जरीगृह्यते, पिपठिषति, इदामति, उत्क्रुस्ते अनुकरोति,
तायते, यजति स्म युधिष्ठिरः, शिष्यः, राजयुध्वा, चिकीर्षुः, एषु
केषाञ्चित् चतुर्णां रूपाणां सिद्धिं कुरुत । १५
- ५ बलिं मिक्षते वसुधाम्, अग्नये स्वाहा, स्थात्यां पचति, मृतपूर्वः,
उपकृष्णम्, घनदयामः, अब्राह्मणः, पाणिपादम्, गवाक्षः, एषां मध्ये
चतुरः प्रयोगान् निशेषसूत्रनिर्देशपूर्वकं साधयत । २०
- ६ आदित्यः, औदुलोमिः, वैनतेयः, कौशाम्बी, सायन्तनम्, अग्नीभवति,
एनी, अतिकेशी, करमोरुः, वैदी, एषु चत्वारः प्रयोगाः साधनीयाः । २०
- (द्र० प० रामचन्द्रज्ञा सम्पादित "वनारस सोत्तरा प्रथमा प्रश्नावली"
नवीन सं० १९७५)
(पाणिनीयप्रबोधे प्रश्नाः)
- १ अ-ट-ल-ष-वर्णानां स्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नञ्च पृथक् पृथक् विलिख्य,
ऋकारबोव्यान् त्रिशदभेदान् प्रदर्शयत । १०
अथवा बाह्याभ्यन्तरप्रयत्नयोः कति भेदास्सन्ति ? तेषां नामानि
लिखत ।
- २ अवस्तनेषु केषामपि पञ्चानां सन्धिविच्छेदं प्रदर्श्य, तान् सूत्रनिर्देश-
पूर्वकं साधयत—
३ रघु० प्रश्नो०

- १ कारागारम्, एकैकम्, हरी एतो, वाङ्मात्रम्, राजंस्तथा, त्वङ्करोषि,
रामो हसति, पुना रमते । १५
- ३ (क) सर्व-पितृ-स्त्री-मधु-इदम्, एषु द्वयोः सर्वाणि रूपाणि लिखत १०
(ख) गम-श्रु-एध-कृ-दा, एषु त्रयाणामेव लुङि रूपाणि दर्शयत १०
- ४ रामान्, सखा, पथः, यूनः, गाम्, दध्नि, आभ्याम्, चतुर्षु, एषु कानपि
चतुरः प्रयोगान् संसाध्य,
इदमः समक्षरूपं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम् ।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥
- ५ त्रिलोकी, चन्द्रमुखा, करमोरः, विप्राय गां ददाति, उपकृष्णम्,
पञ्चगवम्, द्वेमातुरः, विश्वजनीनम्, एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः २०
- ६ भविता, अजैषीत्, तेरतुः, देहि, अजनि, चेक्रीयते, शब्दायते, इत्यः,
नन्दनः, प्रियंवदः, एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः । २०
प्रथमं पत्रं १९७४
(लघुकौमुद्यां प्रश्नाः)
- सूचना—अन्तिमप्रश्नत्रिके द्वावेव समाधेयौ ।
- १ सवर्णसंज्ञाविधायकं, सहितासंज्ञाविधायकञ्च सूत्रं विलिख्य, प्रष्टौहः
शकन्धुः, वाग्धरिः, पुंस्कोकिलः, शिवो वन्धः, स शम्भुः—एषु केषुपि
चत्वारः प्रयोगाः साधु साधनीयाः । ११
- २ रामाय, सर्वेषाम्, सखा, क्रोष्टुः, तिलः, वारिणे—एतेषु केषामपि
चतुर्णां साधुत्वप्रकारः सम्यक् निदर्शनीयः । ११
- ३ अमृत, नेदतुः, अकटीत्, जन्नास, अतत, सविता, स्तरिषीष्ट, कथयति,
अजिज्ञपत्,—एषु चतुर्णां साधनं कार्यम् । ११
- ४ चिकीर्षति, वरोवृत्यते, कष्टायते, अवतिष्ठते, विरमति, अमावि, देयम्,
मृज्यः, भिक्षाचरः, उष्णभोजी,—एषां पञ्च प्रयोगान् साधयत ११
- ५ ग्राममजां नयति, रामेण वाणेन हृत्तो बाली, मोक्षे इच्छास्ति, अधिगोपम्,
यूपदारु, सप्तर्षयः, महाराजः, द्विमूर्धः, हरिहरी, सुराजा,—एषां
चतुरः प्रयोगान् विशेषसूत्रनिर्देशपूर्वकं साधयत । २०
- ६ बाहीकः, वासिष्ठः, माद्रमातुरः, वैयाकरणः, प्रथिमा, हिमानी, चन्द्रमुखी,
हयी, सुजघना—एषु चत्वारः प्रयोगाः साधनीयाः । २०

७ युवन्, युष्मद्, अदस्—एषु कयोरपि द्वयोः चतुर्थीपञ्चमीविभक्तयोः
रूपाणि लिखत ।

(द्र० रामचन्द्रज्ञा संपादित “वनारस सोत्तरा प्रथमा प्रश्नावली”
नवीन संस्करण १९७५)

(पाणिनीयप्रबोधे प्रश्नाः)

१ अनुनासिक-सवर्णसंज्ञाविधायकं सूत्रद्वयं विलिख्य, ट-ऋ-इत्यनयोः
स्थानं बाह्यप्रयत्नञ्च लिखत । १०

अथवा—बाह्याभ्यन्तरप्रयत्नयोः कति भेदास्सन्ति ? तेषां नामानि
सुस्पष्टं लिखत ।

२ रामेच्छा, हर इह, बाङ्मात्रम्, अङ्कितः, मनोरमा, हरी रम्यः, एष
वन्द्यः—एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः । १५

३ (क) सखि, रमा, हरि, गो, धनुष्—एषु द्वयोः सर्वाणि रूपाणि
लिखत । १०

(ख) खाद्, एध्, कृ, दा, भ्रु—एषु त्रयाणामेव लिटि रूपाणि
स्पष्टं प्रदर्शयत ।

४ रामाय, कर्त्ता, पथः, रुच्याम्, दग्ना, युष्माकम्, चतुर्षु—एषु कानपि
चतुरः प्रयोगाद् संसाध्य एषा कारिका व्याख्येया । १५

विशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येयरांख्ययोः ।

संख्यायै द्विवहुत्वे स्तस्ता सुचानवतेस्त्रियः ॥

५ सीमा, सुकेशी, दाशरथी, कुरुः, धावतोऽश्वात् पतति, वटे गावः सुशेरते,
अधिहरि, अक्षशौण्डः, नैयायिकः, प्रथिमा—एषु पञ्च प्रयोगाः
साधनीयाः । २०

५ भवानि, शृणु, आरिष, जहिहि, देहि, बुभूषति, पुत्रीयति, जेयः,
कारकः, सूत्रकारः—एषु पञ्चानां साधनं कार्यम् । २०

प्रथमं पत्रं १९७५

(लघुकौमुद्यां प्रश्नाः)

१ सवर्ण-अनुनासिक-संयोगसंज्ञाविधायकानि सूत्राणि विलिख्य, गंगौघः,
प्राच्छन्ति, गवेन्द्रः, गंगे अमू, चिन्मयम्, संस्कर्त्ता, शिवोऽर्च्यः,
हरीः रम्यः, एषु पञ्चैव प्रयोगाः सूत्रनिर्देशपूर्वकं साधयत । १५

- २ रामस्य, सर्वे, विश्वपः सख्युः, क्रोष्टा, सर्वस्यै, वारिणी, यूनः, युष्मान्, तुदन्ती—एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः । १५
- ३ भवन्ति, आतीत्, गोपायाञ्चकार, -शृणोति, जहि, ग्रध्यगीष्ट, पिपूतः, चिकाय, गृहाण, अवीभवत्—एषु पञ्चानां साधनं कार्यम् । १५
- ४ वुमूषति, नरीनृत्यते, शब्दायते, कण्डूयति, निविशते, प्रवहति, भूयते, शिष्यः, लवित्रम् हित्वा—एषां मध्ये पञ्च प्रयोगान् साधयत । १५
- ५ उच्चैः, ब्रजमवरुणद्वि गाम्, राज्ञः पुरुषः, कटे आस्ते, उपशरदम्, कृष्णश्रितः, कण्ठे कालः, अर्धर्चः, शिवकेशवौ—एषु चत्वारः प्रयोगाः सूत्रनिर्देशपूर्वकं साधनीयाः । २०
- ६ औपगवः, गार्ग्यायणः, वैनतेयः, अस्माकीनः, अजा, त्रिलोकी, गोपी, मनुषी, सर्बिका—एषु चत्वारः प्रयोगाः साधनीयाः । २०

(पाणिनीयप्रबोधे प्रश्नाः)

- १ कानि माहेश्वराणि सूत्राणि ? तेभ्यः कया रीत्या प्रत्याहारसिद्धिः भवति ? १०
अथवा—उदात्तह्रस्वसंज्ञाविधायकं सूत्रद्वयं प्रदर्श्य, सुप्-तिङ्प्रत्याहारौ लेख्यौ ।
- २ अथस्तनेषु पञ्च प्रयोगान् सन्धिविच्छेदपूर्वकं साधयत— १५
देवर्णम्, एकैकम् हरेज्ज, प्रत्यङ्ङात्मा, कुण्ठितः, देवा इह, पुना रमते ।
- ३ (क) राम-त्रि-गो-रमा-मधु—एषु द्वयोः सर्वाणि रूपाणि लिखत । १०
(ख) गम-स्था-श्रु-अस-एषु—त्रयाणामेव लुङि रूपाणि प्रदर्शयत । १०
- ४ रामाणाम्, कर्तारौ, भगवान्, विदुषः, श्रियाम्, अमी, तिस्रः—एषु चत्वारः साधनीयाः । १५
- ५ ऐन्द्री, वामोरूः, उपशदरम्, नरसिंहः, पीताम्बरः, मागिनेयः, नाविकः—एषु कानपि चतुरः प्रयोगान् संसाध्य, एका कारिका व्याख्येया— २०

सहस्रं त्रिषु लिङेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यत्नं व्येति तदव्ययम् ॥

- ६ भविता, अजैषीत्, घ्नन्ति, विभ्यति, अचीकृतत्, अभ्यापयति, शब्दायते, इत्यः, प्रियंवदः, एषु पञ्च प्रयोगाः साधनीयाः । २०

तृतीयं पत्र १९७१

(हितोपदेश-मित्रलाभे अनुवादे च प्रश्नाः)

- १ एकः श्लोकः पूरणीयः—

(अ) आपदर्थे धनं रक्षेत् । (आ) पिता रक्षति कौमारे ।

- २ लोलुपविप्रव्याघ्रकथा हिन्दीभाषया लेखनीया १५

अथवा—निम्नपद्यानां अर्थः हिन्दीभाषायां लेखनीयः—

उषाना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ।

स्वभावेनैव तच्छास्त्रं स्त्रीबुद्धौ सुप्रतिष्ठितम् ॥

मासमेकं नरो याति द्वौ मासौ मृगशूकरौ ।

अहिरेकं दिनं याति, अद्य मध्यो घनुर्गुणः ॥

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते ।

ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि ॥

३. निम्नगद्यभागस्य हिन्दीभाषायाम् अनुवादः कार्यः— २०

अस्ति मनघदेशे चम्पकवती नामारण्यानी । तस्यां चिरान्महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः । स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् दृष्ट-
पुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेनावलोकितः । तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्त-
यत्—“आः कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि । भवतु विश्वासं
तावदुत्पादयामि ।”

अथवा—आसीत् कल्याणकटकवास्तव्यो मरवो नाम व्याघ्रः । स
चैकदा मृगमन्विष्यमाणो विन्ध्याटवीं गतवान् । ततस्तेन व्यापादितं
मृगमादाय गच्छता घोराकृतिः शूकरः दृष्टः । तेन व्याघ्रेण मृगं
भूमौ निधाय शूकरः शरेणाहतः ।

- ४ संस्कृतात् हिन्दीभाषायाम् अनुवादः कार्यः—

कस्मिंश्चिद्देशे शूरसेनो नाम राजासीत् । स पुत्रतुल्यं प्रकृतीः पाल-
यन् सुखेन कालं तिनाय । सुमतिः नाम तस्य मन्त्री । नृपतिस्त-
स्मिन्त्यर्थं प्रीतिमानासीत् । तस्य सचिवस्य ईश्वरे परमा प्रीतिर्बभूव ।

अथवा—काशी गङ्गातटे वनुराकारास्त्रिता वर्तते । गङ्गातटे यावन्तः रमणीयाः घट्टाः अत्र वर्तन्ते तावन्तः कुत्रापि न विद्यन्ते । अनेके स्त्रीपुरुषाः अत्र स्नानाय प्रतिदिनमागच्छन्ति । घट्टेषु प्रतिदिनं सायंकाले विविधानि मनोरञ्जकानि दृश्यानि द्रष्टव्यानि भवन्ति ।

५ हिन्दी भाषातः संस्कृतभाषायाम् अनुवादः कार्यः—

२५

(अ) स्वर्गीय रामकृष्णजी महोदय के वाग में, काशी में अकबर-प्रदत्ता सङ्गमनर की सबसे बड़ी चौकी है ।

(आ) स्वर्गीय पण्डित वामाचरणभट्टाचार्य के साथ स्वर्गीय पण्डित लक्ष्मणशास्त्री द्राविड भी थे ।

(ई) संस्कृतभाषा पुनः राष्ट्रभाषापद पर विराजमान होगी ।

(ई) हे काशिराज विभूतिनारायणसिंह, आप राज्यपाल रेड्डी से मिलें ।

(उ) भारत के किसी भी संस्कृत-शिक्षाशास्त्री को घूमपान न करना चाहिये ।

(ऊ) संस्कृतविश्वविद्यालय के उपकुलपति राय गोविन्दचन्द्र अंग्रेजी में एम्. ए. हैं । हिन्दी में विशारद हैं । भारतीय संस्कृति में डाक्टर (विद्यावारिधि) हैं ।

(ऋ) पापी को धिक्कार ।

काली को नमस्कार । चोर से भय लगता है (१ ÷ २)

तृतीय पत्र १९७२

१ मृग-वायस-शृगालकथा हिन्दीभाषया लेख्या ।

२०

अथवा—निम्नाङ्कितानां पद्यानाम् अर्थः हिन्दीभाषया लेखनीयः—

घनवान् बलवान् लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा ।

प्रभुत्वं घनमूलं हि राज्ञामप्युपजायते ।

कर्तव्यः सञ्चयो नित्यं कर्तव्यो नातिसञ्चयः ।

पश्य सञ्चयशीलोऽसौ वनुषा जम्बुको हतः ॥

कुसुमस्तवकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः ।

सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेद् विशीर्येत वनेऽप्यवा ॥

२ अघस्तनगद्यभागस्य हिन्दीभाषायानुवादः कार्यः— २०

अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान् पर्कटीवृक्षः, तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकाद् गलितनखनयनो जरद्गवनामा गृध्रः प्रतिवसति । अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाहारात् किञ्चित् किञ्चिदुद्धृत्य तस्मै ददति, तेनासौ जीवति, तेषां शावकरक्षां च करोति । अथवा

‘अस्ति गौडीये कौशाम्बीनाम नगरी, तस्यां चन्दनदासो नाम वणिक् महाघनो निवसति, तेन च पश्चिमे वयसि वर्तमानेन कामाधिष्ठितचेतसा घनदर्पात् लीलावतीनाम वणिकपुत्री परिणीता । सा च मकरकेतोर्विजयवैजयन्ती नवयौवनवती बभूव ।’

३ हिन्दीभाषायाम् अनुवादः कार्यः— ३५

‘अस्ति वाराणस्यां रमणीयो वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयः । अस्य संस्थापनं डा० सम्पूर्णानन्दमहोदयस्य सत्प्रयत्नेन समभवत् । संस्कृतस्याध्ययनाध्यापने यथाऽत्र भवतः, न तथा कुत्रचिदत्यत्र । अत्रत्यः सरस्वतीभवनाख्यः पुस्तकालयोऽद्वितीयो वर्तते । अत्र प्रायः सर्वाप्यपि संस्कृतस्य पुस्तकानि प्राप्यन्ते । अस्मिन् विश्वविद्यालये विदेशीयभाषाया अध्यापनस्यापि व्यवस्थाऽस्ति । अत्र नानादेशेभ्यश्चात्राः समागत्य संस्कृतं पठन्ति ।

अथवा—अस्त्यस्माकं देशस्य ‘प्रधानमन्त्री’ श्रीमती इन्दिरा गान्धी । पं० जवाहरलालनेहरूः अस्याः पिता, सोऽपि भारतस्य प्रधानमन्त्रिपदम् अलंकृतवान् । अस्याः पितामहः पं० मोतीलालनेहरूः प्रसिद्धो न्यायविद् बभूव । सम्प्रति सम्पूर्णस्य राष्ट्रस्य शासनसूत्रं निर्वहन्ती इन्दिरागान्धी भारतीयजनतया बहु मन्यते । अस्याः द्वितीयं नाम ‘इन्दिरा प्रियदर्शिनी’ इत्यस्ति ।

४ निम्नलिखितानां वाक्यानां मध्ये केषामपि पञ्चानां वाक्यानां संस्कृतभाषायाम् अनुवादः कार्यः— २५

(अ) भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र है, जिसमें सबको समान अधिकार है । यहाँ प्रजातान्त्रिक शासन है । यहाँ सभी अपने विचार प्रकट कर सकते हैं ।

रघुवंशतराणि-

- (आ) पं० मदनमोहन मालवीय ने अथक प्रयास से हिन्दुविश्वविद्यालय की स्थापना की है । यह उनके यश का प्रतीक है ।
- (इ) संस्कृत के अध्ययन से ही मनुष्य में उत्तम मानवीय चरित्रों का विकास होता है, अतः संस्कृत पढ़ना चाहिये ।
- (ई) महात्मा गान्धी श्रीमद्भगवद्गीता का नित्य प्रातः पाठ किया करते थे । वे तदनुसार आचरण भी किया करते थे ।
- (उ) सरकार संस्कृत के विकास के लिये पर्याप्त प्रयत्नशील है । वह दिन दूर नहीं जब संस्कृत की विशेष उन्नति होगी ।
- (ऊ) प्रातः अवश्य उठना चाहिये । कर्तव्य-विसुख मनुष्य का जीना धिक्कार है । राष्ट्र की रक्षा प्रत्येक नागरिक का प्रमुख कर्तव्य है ।
- (ऋ) भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है । यहाँ सभी स्वधर्मपालन में स्वतन्त्र हैं । यहाँ जातिभेद को स्थान नहीं दिया जाता ।

तृतीयं पत्रं १६७३

- १ चित्रग्रीवहिरण्यककथा हिन्दीभाषया लेख्या । २०
अथवा—निम्नाङ्कितानां पद्यानां हिन्दीभाषया अर्थो लेख्यः—
त्यजेदेकं कुलस्यार्थं ग्रामस्यार्थं कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थं स्वात्मार्यं पृथिवीं त्यजेत् ॥
स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥
यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च वान्धवः ।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥
- २ अधोलिखितगद्यभागस्य हिन्दीभाषयाऽनुवादः कार्यः— २०
अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः । तत्र नानादिग्देशाद्
आगत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति । अथ कदाचिद् अवसन्नायां रात्रौ
अस्ताचलचूडाञ्जलम्बिनि अगवति कुमुदीनीनायके चन्द्रमसि, लघुप-
तनकनामा त्रायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयं अटन्तं पाशहस्तं व्याधं
अपश्यत् ।

अथवा—अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नाम अरण्यानी । तस्यां चिरात् महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः । स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेन अवलोकितः । तं दृष्ट्वा शृगालः अचिन्तयत्—आः ! कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि ?

३ हिन्दीभाषायाम् अनुवादः कार्यः—

३५

भारतवर्षे बहूनि तीर्थानि सन्ति । तेषु वाराणस्याः सुमहन्महत्त्वम् । न केवलं तीर्थरूपेण, अपितु विद्यायाः संस्कृतेष्वच राजधानी इयमेव वाराणसीपुरी । सर्वप्राचीना इयं नगरी । भूयते—भगवतः शङ्करस्य त्रिशूले इयं स्थिता वर्तते । देशाद् विदेशाच्च बहवः पर्यटकाः प्रतिवर्षम् अत्र आगत्य आत्मानं धन्यधन्यं मन्यन्ते । आस्यां त्रयो विश्वविद्यालयाः सन्ति येषु वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयो राजतेतराम् ।

अथवा—विश्वस्मिन् भारतं मदीयं राष्ट्रं विराजते । वयमस्य नागरिकाः परितोऽपि रक्षकाः स्मः । अस्य उत्तरस्यां दिशि हिमालयो विद्यते । अस्मिन् प्रजातान्त्रिकं शासनसूत्रं परिचालयन्ती श्रीमती इन्दिरागान्धी प्रधानमन्त्रिपदे विभाति । सर्वथा सन्नद्धा जागरूकाश्च बहवो नेतारः अस्य देशस्य धुरं वहन्ति । अस्माकं देशो विश्वस्य गुरुः सम्प्रति 'अहिंसा परमो धर्मः' इति शान्तिपाठं शिक्षयति ।

४ निम्नाङ्कितानां वाक्यानां मध्ये केषामपि पञ्चानां संस्कृतभाषायाम् अनुवादः कार्यः—

२५

(अ) हमारा देश स्वतन्त्र है, हम भारतवर्ष के नागरिक होकर इसकी जनमनघन से रक्षा करेंगे ।

(आ) संस्कृत के अध्ययन बिना जीवन शून्य है, आचार धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिये संस्कृत अवश्य पढ़ना चाहिये ।

(इ) गुण से ही मनुष्य की पूजा होती है, अतः गुणार्जन के लिये सर्वदा प्रयत्न करना चाहिये ।

(ई) महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवी आदि महापुरुषों के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करके ही हम अपनी और देश की उन्नति कर सकेंगे ।

रघुवंशेतराणि-

(उ) विद्वान् होने के लिये सदाचारी होना अत्यन्त आवश्यक है, विना सदाचार के विद्या व्यर्थ है ।

(ऊ) वाराणसी में संस्कृत विश्वविद्यालय है, इसकी न केवल देश में, अपितु विश्व में भी ख्याति है ।

(ऋ) जब तक देश की राष्ट्रभाषा संस्कृत नहीं होगी, तब तक साम्प्रदायिक विवादों का उन्मूलन असम्भव है ।

तृतीयं पत्रम् १९७४

१—चित्रग्रीव-हिरण्यककथा हिन्दीभाषया लेख्या —

२०

अथवा—निम्नाङ्कितानां पद्यानां हिन्दीभाषया अर्थो लेख्यः—

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ।

इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च वान्धवः ।

न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थं ग्रामस्यार्थं कुलं त्यजेत् ।

ग्रामं जनपदस्यार्थं स्वात्मार्यं पृथिवीं त्यजेत् ॥

२—अघोलिखितगद्यभागस्य हिन्दीभाषया अनुवादः कार्यः—

२०

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नाम अरण्यानी । तस्यां चिरात्

महता स्नेहेन मृगकाकी निवसतः । स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन्

दृष्टपुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेन अवलोकितः । तं दृष्ट्वा शृगालः

अचिन्तयत् आः ? कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि ? अथवा—

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः । तत्र नाना

दिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति । अथ कदाचिद्

अवसन्त्यां रात्रौ अस्ताचलचूडाबलम्बिनी मगवति कुमु-

दिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः

कृतान्तमिव द्वितीयम् अटन्तं पाशहस्तं व्याधम् अपश्यत् ।

३—हिन्दीभाषया अनुवादः कार्यः—

३५

भारतवर्षे बहूनि दृश्यानि सन्ति । तेषु वाराणस्याः पर्याप्तं महत्त्वम् अस्ति । न केवलं दृश्या एव इयं नगरी किन्तु विद्यायाः संस्कृतेष्व

राजधानी इयमेव वाराणसी पुरी । श्रूयते—भगवतः शंकरस्य त्रिशूले विद्यमाना इयं नगरी वर्तते । अत्र देशेभ्यो विदेशेभ्यश्च बहवः पर्यटकाः प्रतिवर्षम् आगच्छन्ति । अस्यां नगर्यां वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालयो विराजते । अत्र सुरगिरं छात्राः पठन्ति ।

४—निम्नाङ्कितेषु वाक्येषु केषामपि पञ्चानां हिन्दीभाषायाम् अनुवादः कार्यः—

२५

(अ) भारत हमारा देश है । हम इस के निवासी हैं । हम इसकी रक्षा करेंगे ।

(आ) संस्कृत का अध्ययन आवश्यक है । काशी में संस्कृत विश्व-विद्यालय है । यहाँ सब संस्कृत पढ़ते हैं ।

(इ) गुण से मनुष्य की पूजा होती है । संघ में शक्ति है । सत्य बोलो । मिथ्या आचरण मत करो ।

(ई) रमेश पाठशाला जाता है । वह प्रातः काल उठकर अध्ययन करता है । सदा सच बोलता है ।

(उ) वह उद्यान में भ्रमण कर रहा है । पुष्प विकसित हैं । सूर्योदय हो रहा है ।

(ऊ) गुरुजनों का आदर करो । समय से अपना कार्य सम्पन्न करो । सदाचारी बनो ।

(ऋ) मेरा गाँव सुन्दर है । कृषिकार्य समृद्ध है । यहाँ एक सुन्दर विद्यालय है ।

(लृ) हमारा देश विश्व का गुरु है यहाँ प्रजातान्त्रिक शासन है । यह धर्मनिरपेक्ष है ।

तृ० पत्रम् १९७५

१ निम्नाङ्कितपद्येषु द्वयोरेव हिन्दीभाषया अर्थो लेख्यः—

२७

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च वान्धवः ।

न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थं ग्रामस्यार्थं कुलं त्यजेत् ।

ग्रामं जनपदस्यार्थं स्वात्मार्थं पृथिवीं त्यजेत् ॥

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ।

इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥

रघुवं शतराशि-

अथवा—क्याचित् कथा हिन्दीभाषया लेख्य।

२ निम्नाङ्कितगद्यभागस्य हिन्दीभाषया अनुवादः कार्यः— २०

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः । तत्र नानादिग्देशा-
दागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति । अथ कदाचिद् अवसन्नायां रात्रौ
अस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतन-
कनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयम् अटन्तं पाशहस्तं व्याधम्
अपश्यत् । अथवा—

अस्ति भगवद्देशे चम्पकवती नाम अरण्यानी । तस्यां चिरात् महता
स्नेहेन मृगकाको निवसतः । स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गः
केनचित् शृगालेन अवलोकितः । तं दृष्ट्वा शृगालः अचिन्तयत्—
आः ! कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि ?

३ हिन्दी भाषया अनुवादः कार्यः— ३०

भारतवर्षं सुमनोहरम् । तत्र वाराणसी पुरी अतीव रमणीया । इयं
नगरी विद्यायाः संस्कृतेश्च राजधानी । भगवतः शङ्करस्य त्रिशूले
विद्यमाना इयं नगरी वर्तते । अत्र देशेभ्यो विदेशेभ्यश्च बहवः पर्यटकाः
प्रतिवर्षम् आगच्छन्ति । अस्यामेव नगर्यां संस्कृतविश्वविद्यालयो
विराजतेतराम् । अत्र छात्राः संस्कृतस्य अध्ययनं कुर्वन्ति । संस्कृतं
विश्वस्य सर्वप्राचीना देवभाषा अस्ति । अथवा—

संस्कृतभाषाम् उद्दिश्य कश्चन लघुनिबन्धो लेख्यः ।

(द्र० शताधिकनिबन्धयुक्तम् रामचन्द्रज्ञा सम्पादितं 'संस्कृतव्याकरणम्')

४ निम्नाङ्कितेषु वाक्येषु केषामपि पञ्चानां हिन्दीभाषया अनुवादः
कार्यः— ३०

(अ) भारत स्वतन्त्र देश है । हम संस्कृत पढ़ते हैं । संस्कृत उत्तम
भाषा है ।

(आ) काशी में संस्कृत विश्वविद्यालय है । यह अत्यन्त प्राचीन है ।
यहाँ विदेश के छात्र भी पढ़ते हैं ।

(इ) दिनेश पाठशाला जाता है । वह प्रातःकाल ही अध्ययन
करता है । वह सत्यभाषण करता है ।

(ई) संघ में शक्ति है । सदा उत्तम आचरण करो । बड़ों का आदर करो ।

(उ) बालक उद्यान में घूम रहा है । वहाँ सुन्दर फूल खिले हैं । वहाँ एक जलाशय है ।

(ऊ) मेरा गाँव सुन्दर है । स्वच्छ वस्त्र धारण करो ।

(ऋ) गुणों से मनुष्य महान् होता है । गुणवान् बनो ।

(लृ) हमारा देश विश्वगुरु है, यहाँ गणतन्त्र-शासन है । यह धर्मनिरपेक्ष है ।

चतुर्थ पत्र १९७१

(तर्कसंग्रहे प्रश्नाः)

सूचना—इह समानाङ्केषु सप्तसु प्रश्नेषु केऽपि पञ्च समाधेयाः । १००

१ तेजसो लक्षणं भेदोपभेदवर्णनपूर्वकं लिख्यताम् ।

२ प्रत्यक्षस्य लक्षणं तद्भेदौ च सोदाहरणं लिखत ।

३ अनुमानस्य लक्षणं तद्भेदौ च सोदाहरणं स्पष्टयत ।

४ असिद्धस्य लक्षणं भेदा उदाहरणानि च प्रदर्शयन्ताम् ।

५ समवायस्य लक्षणं सोदाहरणं लिख्यताम् ।

६ सामान्यस्य लक्षणं तद्भेदौ च निरूपयत ।

७ अभावभेदान् सलक्षणं सोदाहरणञ्च निर्दिशत ।

(द्र० पं० रामचन्द्रभा कृत 'इन्दुमती' टीका सहित सटिप्पण 'तर्कग्रह')

चतुर्थ पत्र १९७२

सूचना—इह समानाङ्केषु सप्तसु प्रश्नेषु केऽपि पञ्च समाधेयाः । १००

१ वायोर्लक्षणं भेदोपभेदवर्णनपूर्वकं लिख्यताम् ।

२ कारणभेदान् लक्षणोदाहरणनिर्देशपूर्वकं निरूपयत ।

३ लिङ्गपरामर्शं व्याख्याय पञ्चावयववाक्यं स्पष्टयत ।

४ अयथार्थानुभवस्य लक्षणं व्याख्याय तद्भेदान् सोदाहरणं स्पष्टयत ।

५ सत्प्रतिपक्षस्य बाधितस्य च लक्षणं सोदाहरणं स्पष्टयत ।

६ उपमानस्य लक्षणं सोदाहरणं लिखत ।

७ वाक्यार्थज्ञाने लक्षणोदाहरणानिर्देशपूर्वकं हेतून् स्पष्टयत ।

चतुर्थं पत्रं १९७३

सूचना—इह समानाङ्केषु सप्तसु प्रश्नेषु केऽपि पञ्च समाधेयाः । १००

- १ तेजसो लक्षणं भेदोपभेदवर्णनपूर्वकं लिख्यताम् ।
- २ पङ्क्तिविमिन्द्रियार्थसन्निकर्षं स्पष्टं व्याख्यायत ।
- ३ अभावभेदान् लक्षणोदाहरणनिर्देशपूर्वकं निरूपयत ।
- ४ समवायलक्षणं सोदाहरणं निरूप्यताम् ।
- ५ स्वार्थानुमानं परार्थानुमानञ्च सोदाहरणं स्पष्टयत ।
- ६ सव्यभिचारं व्याख्याय तद्भेदान् लक्षणोदाहरणनिर्देशपूर्वकं स्पष्टयत ।
- ७ संस्कारभेदान् सोदाहरणं निर्दिशत ।

चतुर्थं पत्रं १९७४

सूचना—सर्वे प्रश्नाः समानाङ्काः, यथेच्छं पञ्चैव समाधेयाः । १००

- १ पृथिव्याः किं लक्षणं ? कति च भेदाः ? इति स्पष्टं निरूप्यताम् ।
- २ जलस्य किं लक्षणं ? कति च भेदाः ? इति स्पष्टयत ।
- ३ द्रवत्वस्य लक्षणं भेदवर्णनपूर्वकं निरूप्यताम् ।
- ४ कारणस्य किं लक्षणम् ? कारणं कतिविधम् ? इतिसाधु लिखत ।
- ५ व्याप्तेः स्वरूपं सोदाहरणं निरूप्यताम् ।
- ६ हेत्वाभासाः कतिविधा इति नामभिर्निर्दिश्य सत्प्रतिपक्षस्य लक्षणं संमुल्लिख्यताम् ।
- ७ शब्दप्रमाणस्य स्वरूपं व्याख्यायताम् ।
- ८ स्मृतिः कतिविधा इति निर्दिश्य सुखदुःखयोः लक्षणं प्रदर्शयत ।

चतुर्थं पत्रं १९७५

- १ द्रव्याणि कति ? कानि च तेषां नामानि ? इति लिखत । २०

अथवा—

कति गुणाः ? कानि च तेषां नामानि ? इति स्पष्टयत ।

- २ तेजसो लक्षणं भेदोपभेदवर्णनपूर्वकं निरूपयत । २०

अथवा—प्रत्यक्षलक्षणं भेदोपभेदवर्णनपूर्वकं लिखत ।

३ षड्विध इन्द्रियार्थसन्निकर्षः स्पष्टं निरूप्यताम् । २०

अथवा—

समवायलक्षणं सोदाहरणं निर्दिशत ।

४ अनुमानलक्षणं निरूप्य, अनुमानं कतिविधम् ? इति व्याख्यायत । २०

अथवा—

लिङ्गं कतिविधम् ? कानि च तेषां नामानि ? इति सोदाहरणं लिख्यताम् ।

५ सव्यभिचारं निरूप्य, तद्भेदान् लक्षणोदाहरणप्रदर्शनपूर्वकं निरूप्यताम् । २०

वाक्यार्थज्ञाने को हेतुः ? इति स्पष्टं लिखत ।

इति पं० रामचन्द्रभाष्याकरणाचार्य सम्पादिता

प्रश्नोत्तरो समाप्ता ।

श्रीकाशीपतिः पातु वः

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय-वाराणसी, कामेश्वर सिंह संस्कृत

विश्वविद्यालय-दरभंगा, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र,

राजस्थान, कश्मीर आदि समस्त भारतवर्ष के परीक्षापाठ्य

संस्कृत, हिन्दी, अंगरेजी तथा प्राच्य पाश्चात्य

चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकों का वाराणसी

में विश्वविख्यात एकमात्र—

प्राप्तिस्थान—

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

पो० बा० ८, वाराणसी २२१००१

प्रथमा परीक्षा पाठ्य—

रघुवंश-प्रथमसर्गः

‘इन्दुमती’ संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित

प्रश्नोत्तर विभूषित सान्वय संस्कृत हिन्दी व्याख्या, परीक्षोपयोगी व्युत्पत्ति = शब्दार्थ, समास, विग्रह, कोश तथा हिन्दी भाषार्थ सहित यह संस्करण अल्पवयस्क प्रथमा परीक्षार्थी के लिए ही प्रस्तुत किया गया है। इसकी सरल सुबोध व्याख्या परीक्षार्थी को स्वयं अभ्यास करने योग्य है—इसके पठन-पाठन से परीक्षार्थी निश्चित सफलता प्राप्त करेंगे। विविध प्रश्न-पत्रादि विभूषित।

२-२५

